कमलेश्वर के उपन्यासों में सामाजिकता

चैत्रा एस. बी.एड., पीएच.डी.

बिंब प्रकाशन
नं.105/4, (पहला मंज़िल) के–44, तोटदहट्टी रोड,
केंपनंजांब अग्रहार (होटेल तारा के सामने),
के.आर. मोहल्ला, मैसूरु–570 024

Kamaleshwar ke upanyason mein saamaajikata

Written by

Chaitra S. Ph.D., B.Ed.
Assistant Professor & Head,
Hindi Department
J.S.S. Women's College, Mysore.

Published by

Bimba Prakashana
No. 105/4, K-44, (First Floor) Thotada Hatti Road
Kempananjamba Agrahara (Opp. Hotel Tara)
K.R. Mohalla, Mysuru-570 024
Mobile : 9739296847

© : Author

First Edition : 2021

Total No. of Pages : 184

70 GSM Maplitho paper is used for printing

Size of the Book : ¼ Demy

Price : Rs. 150-00

ISBN : 978-81-955799-0-7

DTP : Vishalini M.G.

Printed at

Keerthan Graphics
K.R. Mohalla, Mysuru
Mobile : 9916226213
Email: keerthangraphics@gmail.com

आभार

इस शोध–प्रबंध को प्रस्तुत करने में मैं अपने प्रयास में कहाँ तक सफल हुई हूँ। इसका निर्णय तो विद्वतजन ही करेंगे परंतु इस प्रयास में सर्वप्रथम अपनी शोध निदेशिका डॉ. निर्मला बी., सह प्राध्यापिका एवं अध्यक्षा, महारानी विज्ञान कॉलेज, मैसूर का कुशल एवं सुयोग्य निर्देशन न मिला होता है तो यह कार्य सम्पन्न नहीं हो पाता। आपका विद्वतापूर्ण निर्देशन और स्नेहयुक्त सहयोग, विषय चयन, लेखन, संशोधन परामर्श प्राप्त न होता तो मैं अपने जीवन की विषम परिस्थितियों के घात–प्रतिघातों से निश्चय ही विवश होकर इस शोध कार्य को संपूर्ण न कर पाता। श्रद्धेय गुरूवरा के प्रति मेरे ह्रदय में अपार आदर हैं, जिसे शब्दों में अभिव्यक्त कर पाना असंभव है।

शोध प्रबंध का यह भौतिक स्वरूप निम्न विद्वानों का सहयोग एवं परामर्श का परिणाम है। इनमें हैं प्रोफेसर एवं अध्यक्षा प्रो. अमरज्योति जी (उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, धारवाड़ कर्नाटक) जिनका अमूल्य सहयोग एवं परामर्श मेरे जीवन की अविस्मरणीय निधि है। प्रो. अमरज्योति के सहयोगात्मक रूख से ही आज यह शोध प्रबंध उचित समय पर सामने है। इसी श्रृंखला में डॉ. सतीश कुमार पाण्डेय (प्राचार्य, बसवेश्वर शिक्षा स्नातक कॉलेज, मैसूर) के सलाह–सुझावों की मैं ऋणी हूँ। पिता तुल्य प्रो. सी. वी. बसवराजु (प्राचार्य, जे.एस. एस. स्नातक पूर्व कॉलेज, नंजनगूड, मैसूर) के व्यापक प्रोत्साहन सहयोगी दृष्टि एवं उनका वात्सल्यपूर्ण व्यवहार से मैं उनकी चिर ऋणी हूँ। साथ ही कॉलेज के सहायक प्राध्यापक, मित्र श्री मोहनसिंह (अध्यक्ष, हिंदी विभाग, जे.एस.एस. कॉलेज, नंजनगूड) की आभारी हूँ। कॉलेज की अन्य सहकर्मी श्रीमती सौम्य एन. श्रीमती पूर्णिमा की आभारी हूँ। इन्होंने मुझे अनेक मूल्यवान सलाह–सुझावन देकर समय पर शोध कार्य पर सम्पन्न करवाने में सहयोग प्रदान किया।

मैं हृदय से आभारी हूँ अपने परिवार जनों का जिन्होंने मुझे इस लायक बनाया। मेरे पूज्य माताजी श्रीमती के.एस. देवकी और पिता श्री सुब्रह्मयम स्वामी, मेरे भाई एस वैशाख तथा मेरे प्रिय पति एस. अभिलाष और सास श्रीमती सुधा एस. ससुर श्री सतीश एस. जिन्होंने शोधकार्य में संलग्न रहने के लिए न सिर्फ प्रोत्साहित किया बल्कि हर तरह की सहायता (आर्थिक, मानसिक, शैक्षिक) के साथ प्रेरणा प्रदान की, जिनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करके उनके सम्मान को कम करना है, परंतु हमारी भारतीय संस्कृति के अनुसार मैं उनके प्रति आभार व्यक्त करती हूँ तथा उनके चरणों में नतमस्तक होती हूँ।

कमलेश्वर की तरह मेरे मित्र कम नहीं, मैं हृदय से आभारी हूँ मेरे उन सभी मित्रों की जिनका सहयोग एवं समर्थन मुझे समय–समय पर मिलता रहा है। नामोल्लेख करके मैं उनकी निस्संग अन्तरंगता को विभक्त नहीं करना चाहती।

अंत में, जिन लेखकों व रचनाकारों की कृतियों की सहायता इस शोध प्रबंध लेखन के लिए ली है, उनकी सूची भी दी गई है। मैं उनकी हृदय से आभारी हूँ, उनके ग्रंथों की सहायता से मेरा यह शोध प्रबंध पूर्ण हो पाया है।

एक बार फिर उन सब विद्वानों एवं सहयोगियों तथा संबंधियों का आभार जिन्होंने प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से मेरे इस कार्य के लिए सहयोग प्रदान किया।

चैत्रा एस.

प्राक्कथन

हिंदी साहित्य के स्वातंत्र्योत्तर काल में अनेक नए कहानीकारों एवं उपन्यासकारों का प्रादूर्भाव हुआ। उन्हीं नए लेखकों में एक नाम समांतर रूप से उभरता चला गया, जिसने आम आदमी का स्वर, उसकी पीड़ा उसकी त्रासदी को अपने साहित्य में उकेरा। सत्ता से लेखकीय, संपादकीय स्तर पर निरंतर जूझता रहा। एक अनवरत संघर्ष और तीखा प्रहार करना, यही उसकी मानसिकता और नैतिकता का परिचायक है। जिसने अपने उपन्यास साहित्य माध्यम से नए प्रतिमान स्थापित किए। उस चर्चित साहित्यकार का नाम बना–कमलेश्वर। नितांत साधारण परिवार में जन्मा, असाधारण प्रतिभा सम्पन्न लेखक हिंदी साहित्य में एक सशक्त हस्ताक्षर बन गये।

समाज में परिवर्तन होना एक शाश्वत प्रक्रिया है। दुनिया में शायद ही ऐसा कोई समाज हो जो परिवर्तन से अछूता रहा हो। आज सम्पूर्ण विश्व वैश्वीकरण के दौर से गुजर रहा है। इस वैश्वीकरण की प्रक्रिया को गति और दिशा प्रदान करने में सबसे बड़ा योगदान पत्र–पत्रिकाओं तथा संचार माध्यमों का रहा है। आज हमारा देश जिस सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है, उसमें मानव समाज चाहे जितनी तकनीकी उन्नति कर ले, लेकिन जहाँ मानवता और नैतिक मूल्य का प्रश्न है, उसमें मनुष्य दिन–प्रतिदिन अपने आप को ह्रसोन्मुख महसूस कर रहा है। आज मनुष्य भोगवादी होता जा रहा है, अधिकतम संसाधानों के उपयोग से मनुष्य का जीवन सीमित होता जा रहा है जिससे समाज का वास्तविक स्वरूप धूमिल होता जा रहा है। आज का मनुष्य अपने ही परिवार में अपने आपको अकेला और तन्हा महसूस कर रहा है। क्योंकि अब परिवार पति–पत्नी और बच्चों तक ही सिमट गया है। प्रख्यात कथाकार कमलेश्वर (1932–2007) ने अपने साहित्य सृजन के केन्द्र में इन्हीं सब बातों पर ध्यान केन्द्रित किया। कमलेश्वर पुराने नैतिक आदर्शों और आधुनिक

व्यावहारिक मूल्यों की टकराहट और उससे उत्पन्न तनाव का यथार्थ चित्र अंकित करने में पटु हैं। कमलेश्वर ने अपने साहित्य में जन सामान्य की जिन्दगी और जमीन से जुडे मानवीय आशा–आकांक्षाओं व जीवन संघर्षों को उद्घाटित किया है तथा भौतिकता के युग में शून्य पड़ती मानवीय संवेदना के समक्ष सामान्यतः छोटी से छोटी समस्याओं को बड़ी गम्भीरता के साथ उठाया गया है। इन्होंने अपने साहित्य में कस्बाई जिन्दगी से लेकर महानगरी चहल–पहल का पूरा दृश्य रेखांकित किया है।

अनुक्रम

- साहित्य, समाज एवं समाजशास्त्र 8
- कमलेश्वर : व्यक्तित्व और कृतित्व : एक विश्लेषण 20
- कमलेश्वर के उपन्यास : परिचयात्मक अध्ययन 69
- सामाजिक संरचना, परिवेश तथा कमलेश्वर के उपन्यास 101

उपसंहार 169

संदर्भ ग्रंथ सूची 174

साहित्य, समाज एवं समाजशास्त्र

साहित्य : अर्थ, परिभाषा और क्षेत्र

अर्थ : साहित्य शब्द 'सहित' में 'यत्' प्रत्यय के योग से बना है। जिसका अर्थ है शब्द और अर्थ का यथावत् सहभाव अर्थात् 'साथ होना'। इस प्रकार सार्थक शब्द मात्र का नाम 'साहित्य' है।[1] साहित्य का अर्थ बहुत व्यापक है और इसमें मनुष्य की सारी बोधन और भावन–चेष्टा समाविष्ट हो जाती है तथा समस्त ग्रंथ समूह 'साहित्य' के अन्तर्गत आ जाते हैं। साहित्य मनुष्य के भावों और विचारों की समष्टि हैं।

परिभाषा : प्राचीन प्रयोगों से यह स्पष्ट है कि साहित्य शब्द मूल रूप में 'शास्त्र' के अर्थ में प्रयुक्त होता था, परन्तु बाद में 'काव्य' के लिए भी इस शब्द का प्रयोग होने लगा। भर्तृहरि ने 'साहित्य', संगीत, कला की गयी में साहित्य को काव्य का समानार्थक माना हैं। भर्तृहरि का समय 640 ई. के लगभग माना जाता है। अतः ईसा की सातवीं शताब्दी में 'साहित्य' शब्द काव्य के लिए प्रयुक्त होने लगा था।

भारतीय परिभाषा : उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि साहित्य शब्द 'काव्य' का समानार्थी हैं। हमारी भारतीय साहित्य परम्परा की शुरूआत हम संस्कृत में पाते हैं। और इसी श्रृंखला में शुरूआती परिभाषाएं भी संस्कृत काव्यशास्त्रियों की मिलती हैं, बाद में हम आधुनिक शास्त्रियों की परिभाषाएं पातें हैं। काव्य की सबसे पुरानी परिभाषा हमें अग्नि पुराण की माननी चाहिए। अग्निपुराण में काव्य की परिभाषा हैं –

संसेपाद्वाक्यमिष्टार्थ व्यवच्छिन्ना पदावली।
काव्यं स्फुरदलंकार गुणवद्वोषवर्जितम।।[2]

संक्षेप में दृष्ट अर्थ को प्रकट करने वाली पदावली में मुक्त ऐसा वाक्य काव्य है जिसमें अलंकार प्रकट हों और दोष रहित और गुणयुक्त हों।

काव्यालंकार के रचयिता

अग्निपुराण के बाद हम भामह की परिभाषा लेते हैं। उनका कथन हैं–''शब्दार्थो सहितौ काव्यम।''[3] शब्द और अर्थ का संयोग काव्य है। मम्मट की काव्य की परिभाषा अग्निपुराण की सी हैं तद्दोषौ शब्दार्थो सगुणावनलंकृति क्वापि।[4] यहां पर काव्य दोषहीन, गुणयुक्त और कभी–कभी अलंकार से रहित शब्दार्थ हैं। आचार्य हेमचन्द्र के काव्यानुशासन में दी हुई परिभाषा भी इसी पद्धति पर हैं 'अदोषौ सगुणौसालंकारौ च शब्दार्थो काव्यम्[5] इसमें एक साथ दोषहीनता, गुण और अलंकार अनिवार्य हो जाते हैं। आचार्य विश्वनाथ का मत है–वाक्य रसात्मकं काव्यम्।[6] यहाँ पर रस से परिपूर्ण वाक्य को काव्य या साहित्य माना है। पण्डित जगन्नाथ की काव्य परिभाषा है–रमणीयार्थ प्रतिपादक शब्दः काव्यम्।[7] रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करने वाला शब्द काव्य हैं। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के अनुसार 'ज्ञानराशि के संचित कोष का नाम साहित्य है'। डॉ. भागीरथ मिश्र के अनुसार–शब्द, अर्थ अथवा दोनों की रमणीयता संयुक्त वाक्य रचना को काव्य कहते हैं।[8] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कविता को जीवन और जगत् की अभिव्यक्ति माना हैं।''[9] जयशंकर प्रसाद ने लिखा है–''काव्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है जिसका संबंध, विश्लेषण, विकल्प या विज्ञान से नहीं है। वह एक श्रेयमयी प्रेम रचनात्मक ज्ञानधारा है।''[10] महादेवी वर्मा की कविता की परिभाषा इस प्रकार हैं–''कविता कवि विशेष की भावनाओं का चित्रण है और वह चित्रण इतना ठीक है कि उसमें वैसी ही भावनाएं किसी दूसरे के हृदय में आविर्भूत होती हैं।'' इसी प्रकार काव्य को कविता के अर्थ में बांधकर आगे के सभी परिभाषाकारो कार्यो ने इसी अर्थ में रूढ़ करके देखा हैं। इस शृंखला

में सुमित्रानंदन पंत लिखते हैं –''कविता हमारे परिपूर्ण क्षणों की वाणी हैं।''

पाश्चात्य परिभाषाएं:–पाश्चात्य विद्वानों ने भी साहित्य की विभिन्न परिभाषाएँ प्रस्तुत की है जिनमें से कुछ यहाँ उल्लेखनीय हैं। आचार्य अरस्तू ने 'शब्दों' के माध्यम से प्रस्तुत अनुकृति'' को काव्य या साहित्य की संज्ञा दी हैं।[11]

सिडनी के विचार से 'काव्य या साहित्य वह अनुकरणात्मक कला है जिसका लक्ष्य शिक्षा और आनन्द प्रदान करता है।''[12] एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका में लिखा है–"Poetry art Work of the poet" अतः कवि का कार्य, कला, काव्य है।''[13] प्रसिद्ध कवि ड्राइडन का विचार है कि–कविता सुस्पष्ट संगीत है।''[14] कॉलरिज ने लिखा है– 'सर्वोत्तम शब्द अपने सर्वोत्तम क्रम में कविता होती है।''[15] वर्ड्सवर्थ का विचार है कि ''कविता प्रबल अनुभूतियों का सहज उद्रेक है जिसका स्त्रोत शांति के समय स्मृत मनोवेगों से फूटता है।''[16] शैली के विचार से 'सर्वमुखी और सर्वोत्तम मनों के सर्वोत्तम और सर्वाधिक सुखपूर्ण क्षणों का लेखा कविता है।''[17] उन्नीसवीं शताब्दी के प्रसिद्ध लेखक डॉ. जॉनसन ने कविता (साहित्य) को उस कला के रूप में स्वीकार किया है जो कल्पना की सहायता से युक्ति के द्वारा सत्य को आनन्द से समन्वित करती है।[18] इस प्रकार अलग–अलग विद्वानों ने अलग–अलग परिभाषाएँ प्रस्तुत की हैं। जिनसे काव्य या साहित्य को समझना कठिन है। फिर भी साहित्य के स्वरूप के स्पष्टीकरण के लिए ये परिभाषाएँ आवश्यक हैं।

क्षेत्र : साहित्य के क्षेत्र या रूप पर विचार करते हुए डॉ. भागीरथ मिश्र ने साहित्य के प्रमुखतया पाँच भेद किये हैं – 1. विज्ञान 2. दर्शन 3. शास्त्र 4. इतिहास 5. काव्य[19] ये रूप क्रमशः बुद्धि या तर्क से अनुभूति और कल्पना के सम्मिश्रण के अनुपात के अनुसार है। इनमें से भी साहित्य या काव्य के भेद करते हैं तो प्रधान रूप से दो भेद हैं गद्य और पद्य। छंदयुक्त रचना पद्य कहलाती है और छंदहीन

रचना गद्य है। इसके बाद पद्य काव्य को प्रबंध काव्य तथा मुक्तक काव्य के रूप में देखते हैं। गद्य काव्य में कहानी, उपन्यास, निबंध, जीवनी, संस्मरण, रेखाचित्र, नाटक, आत्मकथा, रिपोर्ताज यात्रा वृतांत आदि भेद–प्रभेद सामने हैं। आज हमारे मानव जीवन के विकास के साथ साहित्य के क्षेत्र का विकास भी हुआ है। आधुनिक अनेक विधाएँ कालक्रमानुसार बदलती और बनती रही हैं। जीवनी, रेखाचित्र, संस्मरण, रिपोर्ताज आत्मकथा एकदम अधतन गध विधाएँ हैं। कविता मनुष्य के साथ बराबर चलती रही हैं। परंतु साथ–साथ अन्य गद्य विद्याओं का भी जन्म हुआ, जिनका नामोल्लेख ऊपर किया है। साहित्य के क्षेत्र विस्तार की बात करें तो इस पर अलग से पुस्तक लेखन हो सकता है, पर हमारा विचार केवल साहित्य की विधाओं से परिचय करना है, और अन्य कुछ नहीं। तर्क और प्रयोग पर आधारित सिद्धांत और नियमों को स्पष्ट करने वाला व्यवस्थित ज्ञान विज्ञान है, उसी प्रकार तर्क तथा बुद्धि पर आधारित ज्ञान 'दर्शन' है इसी तरह मानव जीवन से संबंधित और उसके उपयोगी नियम और सिद्धांत, जो जीवन के किसी पक्ष की एक पूर्ण धारणा को स्पष्ट करते हैं 'शास्त्र' कहलाते हैं। किसी वस्तु, व्यक्ति या जाति के व्यतीत वृतांत का प्रामाणिक लेखा इतिहास कहलाता है, तो काव्य जीवन और सत्य के किसी स्वरूप का आकर्षक और सजीव चित्रण हैं।

समाज : अर्थ, परिभाषा और स्वरूप

'समाज' शब्द का प्रयोग साधारण बोलचाल की भाषा में खूब किया जाता है। सामान्य बोलचाल तथा समाजशास्त्र में इसका अर्थ भिन्न–भिन्न है। समाज शब्द का प्रयोग साधारणतया व्यक्तियों के समूह के रूपों में किया जाता है। ब्रह्म समाज, आर्य समाज, महिमा समाज आदि रूप में भी इस शब्द का प्रयोग होता है। 'समाज' शब्द का प्रयोग विभिन्न सामाजिक विज्ञानों, सामाजिक मानवशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीति विज्ञान आदि में अलग–अलग अर्थो में किया

जाता है। राजनीति विज्ञान में समाज से तात्पर्य व्यक्तियों के समूह से है तो अर्थशास्त्र का अर्थ व्यक्तियों का वह समूह है जिसमें परस्पर आर्थिक प्रक्रियाएँ होती है। एक शब्द के अनेक अर्थ होने के कारण सामाजिक विज्ञानों में मूल अवधारणाओं का विशेष अध्ययन किया जाता है।

समाजशास्त्र में 'समाज' का अर्थ अलग लगाया जाता है। इस विज्ञान में समाज का अर्थ सामाजिक संबंधों का जाल है। जब बच्चा पैदा होता है तो वह एक जीव मात्र होता है लेकिन समाज में आकर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु दूसरे व्यक्तियों से सहयोग लेता है। परस्पर अंतःक्रिया द्वारा वह समाज के अनेक व्यक्तियों से संबंध स्थापित करता है न परिवार में भी वह विभिन्न व्यक्तियों से संबंध स्थापित करता है। वह समाज में रहकर आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक, धार्मिक, नैतिक, शैक्षणिक आदि असंख्य संबंधों को बनाता है। इन्हीं संबंधों के ताने–बाने को समाज कहते हैं। समाज की परिभाषाएँ अनेक विद्वानों ने दी है जो निम्न प्रकार हैं–

मैंकाइवर और पेज अनुसार–''समाज रीतियों और कार्यप्रणालियों प्रभूत्व एवं सहयोग अनेक समूहों एवं वर्गों की तथा मानव व्यवहार और नियंत्रणों और स्वतंत्रताओं की एक व्याख्या है।''[20]

टयूटर के अनुसार–''समाज एक अमूर्त शब्द है जो एक समूह के सदस्यों के मध्य पाए जाने वाले जटिल पारस्परिक संबंधों का बोध कराता है।[21]

राइट के अनुसार–''समाज का तात्पर्य सिर्फ व्यक्तियों का समूह ही नहीं है, वरन समूह में रहने वाले व्यक्तियों में जो संबंध है, उसके संगठित रूप को समाज कहते हैं।''[22]

पार्सन्स के अनुसार–''समाज मानव संबंधों की सम्पूर्ण जटिलता है, जहां तक कि वे क्रियाओं के करने से उत्पन्न हुए हैं और वे कार्य साधन या साध्य के रूप में किये गये हैं, चाहे वे यथार्थ हो या प्रतीकात्मक।[23] भारतीय काव्यशास्त्री एवं प्रसिद्ध आलोचक डॉ. नगेन्द्र

के अनुसार –''सामान्य रूप से समाज से अभिप्राय सामुदायिक जीवन की ऐसी अनवरत एवं नियामक व्यवस्था से है जिसका निर्माण व्यक्ति पारस्परिक हित तथा सुरक्षा के निमित्त जाने अनजाने कर लेते हैं। आरंभ में इस सामुदिक व्यवस्था का स्वरूप सरल और व्यापक होता हैं, परंतु विभाग के साथ वह क्रमशः जटिल होकर वर्ग व्यवस्था में परिणित हो जाता है।[24]

समाज का स्वरूप : समाज के अर्थ, परिभाषा पर विचार करने के पश्चात् अब समाज का स्वरूप विवेचन आवश्यक हो जाता है। समाज मानव संबंधों का जाल है। इसके अन्तर्गत रीति–नीति, कार्य–प्रणाली तथा पारस्परिक संबंधों का सपुंज होता है। माता–पिता, पिता–माता, भाई–बहिन, पिता–पुत्र/पुत्री संबंध तथा अन्य सामाजिक संबंधों के फलस्वरूप एक सभ्य समाज का निर्माण होता है। मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समाज में रहना पसंद करता है। फिर धीरे–धीरे मनुष्य के व्यवहार पर भी आवश्यक नियंत्रण हो जाता है।

समाज के स्वरूप पर विचार करते समय समाजशास्त्र में समय के दो रूप बताएं हैं–समाज तथा एक समाज। समाज के अर्थ, परिभाषा पर विचार किया जा चुका है। एक समाज किसे कहा जाए। इसके लिए समाजशास्त्रियों ने अपनी तरह से इसे परिभाषित करने का प्रयास किया है।

मेजर के अनुसार–'एक समाज' व्यक्तियों का एक ऐसा समूह समझा जाता है जिसमें सामान्य क्रियाओं के कुछ प्रकारों में सचेतनभागिता होती है।'' टयूटर महोदय कहते हैं कि 'एक समाज' समाज में बिल्कुल भिन्न एक ऐसा संगठन हैं, जिसके द्वारा लोग अपना सामान्य जीवन व्यतीत करते हैं''[25]

एक समाज की विशेषताओं पर विचार करने पर कुछ प्रमुख विशेषताएँ सामने आती हैं–'एक समाज' व्यक्तियों का बड़ा समूह है। यह मूर्त है क्योंकि व्यक्तियों के संगठन से बनता है। इसका क्षेत्र बहुत

सीमित होता है। इस समाज के सदस्यों के पारस्परिक संबंधों, व्यवहारों तथा क्रियाओं में समानता होती है। इसके सदस्यों के उत्तरदायित्व बहुत सीमित होते हैं। दोनों समाजों में जहाँ समानता है वहीं असमानता या वैषम्य भी है। एक समाज जहाँ व्यक्तियों का समूह है, वही समाज सामाजिक संबंधों का जाल है। एक समाज की प्रकृति मूर्त है तो समाज की स्थिति अमूर्त है। एक समाज की व्यवस्था जहाँ सरल है, तो एक समाज एक जटिल व्यवस्था है।

इस प्रकार समाज के अर्थ, परिभाषा तथा स्वरूप पर विचार अध्ययन करने के पश्चात् बहुत सी बातें निकलकर समाने आती हैं। समाज व्यक्तियों तथा उनके पारस्परिक संबंधों का जाल है। जहाँ रीति–नीति, परंपराओं का निर्वाह करते हुए सामाजिक कार्यो को मूर्त रूप दिया जाता है। समाज एक संगठन है, व्यवस्था हैं, संरचना हैं, व्यक्तियों तथा उनके संबंधों की।

साहित्य और समाज का अंतःसंबंध

साहित्य और समाज का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है और वे एक–दूसरे को प्रभावित करते हैं। ये एक–दूसरे को प्रेरणा और सहायता देते हैं। इसलिए प्राचीन काल से मानव में साहित्य का सर्जन, अध्ययन करने की प्रवृति रही है, क्योंकि साहित्य प्रत्येक युग और पर्यावरण के युगानुरूप स्वरूप ग्रहण करके पाठकों के ध्यान को अपनी ओर आकृष्ट करने में समर्थ होता है। साहित्य और समाज के अंतःसंबंध पर विचार करते समय सर्वप्रथम ऐलन स्विंगवुड के आलेख पर ध्यान जाता है, जिसका अनुवाद डॉ. निर्मला जैन ने किया है। स्विंगवुड ने लिखा है कि–समाजशास्त्र की ही तरह, साहित्य का मुख्य सरोकार होता हैं–मनुष्य का सामाजिक जगत के प्रति उसकी अनुकूलता और उसे बदलने की इच्छा।''[26] साहित्य की बहुत–सी परिभाषाएँ की गई हैं, यह मेरे विचार से सर्वोत्तम परिभाषा जीवन की आलोचना है। चाहे वह निबन्ध के रूप में हो, चाहे कहानियों के, या

काव्य के, उसे हमारे जीवन की आलोचना और व्याख्या करनी चाहिए।[27] साहित्य एक भाव–समष्टि का नाम है, क्योंकि जैसे जीवन कहने से समस्त प्राणियों के समष्टिगत जीवन का बोध होता है, वैसे ही साहित्य कहने से एक भाव–समष्टि का बोध होता है। ''यह भाषा के माध्यम से जीवन की अभिव्यक्ति है।[28] साहित्य वह है जो लोकमंगलकारी हो, जो श्रेयकर हो और जो अखण्ड आनन्द का विधायक हो। ''साहित्य इसलिए बड़ा नहीं है कि उसमें गद्य, पद्य, छंद, कथा–कहानी होती है। बल्कि इसलिए बड़ा है कि मनुष्य को उन्नत और विशाल बनाता है।''[29] साहित्य के भाव समाज से प्रभावित होते हैं। साहित्य और समाज के बीच निकट सम्बन्ध है। साहित्यकार समाज में रहता हुआ विशिष्ट ढंग से अपना जीवन–निर्वाह करता है। समाज से निरपेक्ष साहित्यकार का कोई महत्त्व नहीं है। वह पग–पग पर समाज से सम्बद्ध रहता है। जिससे उसका साहित्य भी समाज से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। साहित्य की सामग्री सामाजिक जीवन से ग्रहण की जाती है। साहित्यकार स्वयं को समाज से विच्छिन्न नहीं कर सकता। इसलिए उसके साहित्य में सामाजिक भावों एवं विचारों की प्रतिच्छाया दृष्टिगोचर होती है। ''कवि समाज का प्राणी है अतः समाज की परिस्थिति का प्रभाव उस पर पड़े बिना नहीं रह सकता।''[30] इस प्रकार जनवाणी ही कवि की वाणी बनकर साहित्य की संज्ञा प्राप्त करती है और यह साहित्य समाज की उपज होता है।

प्रत्येक समाज का अपना एक विशिष्ट व्यक्तित्व होता है जो समाज के आचार–विचार, संस्कार एवं पर्यावरण पर निर्भर करता है। समाज का यह व्यक्तित्व उसके साहित्य में न केवल अभिव्यक्त होता है बल्कि उसके स्वरूप को भी निर्धारित करता है। कदाचित् इसीलिए प्रत्येक देश का साहित्य दूसरे देश के साहित्य से स्वरूपगत भिन्नता रखता है। हिन्दू समाज और परिणामस्वरूप भारतीय साहित्य में जो दान, त्याग और तपस्या आदि के भाव देखने को मिलते हैं, वे मुस्लिम समाज और उसके साहित्य में नहीं। हिन्दुओं के राम, भरत के लिए

और भरत, राम के लिए सिंहासन ठुकराते रहे हैं, जबकि मुस्लिम लोग तख्तोताज के लिए स्वजनों–परिजनों के रक्त की नदियाँ बहाते रहे हैं। भारतीय साहित्य में शिव, हरिश्चन्द्र और दधीचि से दानियों की महिमा के पृष्ठ भरे पड़ें हैं। मुस्लिम लोग मांसाहारी है, अतः प्रेम–प्रसंग जैसे सुकुमार सुकोमल प्रसंगों में भी खून–खंजर, छुरी और मौत, मांस जैसी वीभत्स कल्पना करते हैं। जो भारतीय साहित्यिक दृष्टिकोण से श्रृंगार–रस विरोधी है। मुस्लिम साहित्य में नाटक–साहित्य का अभाव इसलिए बना हुआ है क्योंकि मुसलमान प्रारम्भ से ही मूर्तिपूजा और दूसरों की अनुकृति करने के विरोधी रहे हैं। इसी प्रकार का सामाजिक और साहित्यिक अन्तर भारत और यूरोपीय देशों के बीच भी देखा जा सकता है। जान मिल्टन द्वारा–रामचरितमानस' और तुलसीदास के द्वारा 'पेराडाइजलास्ट' के लिखे जाने की कल्पना भी नहीं की जा सकती, क्योंकि दोनों रचनांए अपने–अपने रचयिताओं के युग एंव संस्कारों के अनुरूप हैं, कालिदास और शेक्सपियर की तुलना करते हुए बाबू गुलाबराय ने कहा है कि ''इन महाकवियों की कृतियों में अपने–अपने देश की छाप लगी हुई है।[31] यही बात तुलसी, मिल्टन आदि किसी भी अन्य कवि के विषय में कही जा सकती है। वस्तुतः प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चितवृत्तियों का संचित प्रतिबिम्ब होता है।

साहित्यकार व्यक्ति रूप में अकेले में जो कुछ निजी भावों को लिखित रूप प्रदान करता है, उस पर सामाजिक परिवेश का आवरण लिपटा रहता है। उसकी रचनाएँ सामाजिक मान्यता के परिवेश मे रचित और विकसित होती हैं। साहित्य मर्मज्ञ सदैव युग–जीवन से पग मिलाकर चलता है। जो साहित्य–युगीन चेतना से अनुप्राणित नहीं होता। उसे हम श्रेष्ठ साहित्य की संज्ञा नहीं दे सकते। ''जीवन ही साहित्य का मेरुदण्ड है, जो स्थूल और सूक्ष्म की अनन्त ग्रन्थियों से निर्मित है। साहित्य जीवन की संवेदनाओं से अलग रह ही नही सकता। यदि वह स्वस्थ संवेदनाओं से रहित है तो वह अजागलस्तन

की भांति निरर्थक है।''[32] समय एक गतिशील धारा है जिसकी अभिव्यक्ति युगीन स्थितियों, परिस्थितियों एंव गतिविधियों के माध्यम से हुआ करती है। सृष्टि के आदिम युग से लेकर आधुनिक युग तक यही चला आ रहा है कि आज की परिस्थितियाँ कल की परिस्थितियों से सदैव भिन्न होती है। साहित्य समाज का दर्पण है। अतः वह भिन्नता साहित्य के क्षेत्र में भी देखने को मिलती है, समसामयिक घटना–चक्रों का वर्णन साहित्य में आता चला जाता है। इसीलिए 'मैथिलीशरण गुप्त' अपने गौरवशाली अतीत और युग–पुरुषों का स्मरण करके, कहने को विवश हो उठते हैं–

''हम कौन थे, क्या हो गए हैं और क्या होंगे अभी,
आओ विचार करें, आज मिलकर ये समस्याएँ सभी।''[33]

कहने का अभिप्राय यह है कि युगीन घटना–चक्र साहित्यकार के मन और मस्तिष्क पर अमिट प्रभाव डालते हैं। इसीलिए कहा गया है कि ''साहित्य में कवि या लेखक के व्यक्गित तथा सामाजिक अनुभवों, दार्शनिक–आध्यात्मिक विचारों, प्रेम–भावना और सौन्दर्य–बोध आदि की अभिव्यक्ति होती है।[34] साहित्य अपनी अमोघ शक्ति के बल पर समाज में सुख–शांति की स्थापना से लेकर बड़ी–बड़ी राजनीतिक क्रान्तियों का सूत्रपात तक कर सकता है और करता आया है। ''रूसी राज विप्लव वहाँ के साम्यवाद सम्बन्धी विचारों का ही परिणाम है। फ्रांस की राज्य क्रान्ति बोलतेर और रूसों के विचारों का ही प्रतिबिम्ब है।[35]

साहित्य कला सामाजिक उन्नति की आधारशिला है, क्योंकि समाज को भावी परिस्थितियों का पूर्ण ज्ञान मिलने पर वह सचेत हो जाता है। साहित्य कला पाठक का मनोरंजन करती है, वह उसे आनन्द–विभोर कर देती है–''साहित्य भाषा के माध्यम से रचित, वह सौन्दर्य या आकर्षण युक्त रचना है, जिसके अर्थबोध से सामान्य व्यक्ति को आनन्द की अनुभूति होती है।[36] साहित्य और समाज का परस्पर चोली–दामन का साथ है। अतः कह सकते हैं कि –

जिस प्रकार साहित्य के निर्माण में समाज का सर्वाधिक हाथ रहता है, उसी प्रकार समाज के निर्माण में साहित्य का भी योगदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। साहित्य समाज का शिक्षक है। समाज के सर्वांगीण विकास में साहित्य का योगदान महत्वपूर्ण है।

निष्कर्षतः साहित्य और समाज दोनों ही चेतना के विभिन्न अंश है और एक के विनाश से दूसरे का भी अंत हो जाता है। इसीलिए विश्व के जिन प्राचीन समाजों का आज अस्तित्व कही दिखाई नहीं देता, उसका मूल कारण वहाँ के साहित्य का नष्ट भ्रष्ट हो जाना है। इसी प्रकार जिस प्राचीन साहित्य का आज विश्व में कहीं अस्तित्व नहीं दिखाई देता, उसका मूल कारण वहाँ के समाज का विनष्ट होना है।

अन्ततः हम कह सकते हैं कि साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब नहीं अपितु उन्नायक है और समाज साहित्य के लिए महत्वपूर्ण भावभूमि है।

संदर्भ संकेत

1. धीरेन्द्र वर्मा (सं)–हिन्दी साहित्य कोश, पृ. 764
2. अग्निपुराण, 337 अध्याय, 607 श्लोक
3. काव्यालंकार, प्रथम परिच्छेद, पृ. 16
4. मम्मट–काव्यप्रकाश
5. हेमचन्द्र–काव्यानुशासन
6. विश्वनाथ–साहित्यदर्पण
7. डॉ. भागीरथ मिश्र–काव्यशास्त्र, पृ. 10
8. वही, पृ. 11
9. वही, पृ. 16
10. जयशंकर प्रसाद–काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ. 17
11. डॉ. रामशरण गुप्ता, प्रो. राजकुमार शर्मा–साहित्यशास्त्र, पृ. 6
12. वही, पृ.6

13. डॉ. भागीरथ मिश्र – काव्यशास्त्र, पृ. 11
14. वही, पृ. 11
15. वही, पृ. 11
16. वही, पृ. 12
17. वही, पृ. 12
18. वही, पृ. 13
19. वही, पृ. 44
20. मैकाइवर और पेज – Society, पृ. 21
21. इ.बी. रयूट्र–Hand Book of Sociology पृ 157
22. राइट–Element of Society पृ. 21
23. पार्सन्स–Encyelopedia of Socail Science पृ 231
24. डॉ. नगेन्द्र–साहित्य का समाजशास्त्र पृ. 6
25. इ.बी. रयूट्र – Hand Book of Sociology पृ 157
26. निर्मला जैन –साहित्य का समाजशास्त्रीय चिंतन पृ. 2
27. प्रेमचन्द– कुछ विचार, (साहित्य का उद्देश्य) पृ.3
28. हडसन, डॉ. ऊर्मिल गंभीर, प्रतापनारायण श्रीवास्तव के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन, पृ. 55
29. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : मुल्कराज शर्मा–अमृतलाल नागर के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन, पृ. 49
30. रामकुमार वर्मा–साहित्य चिंतन, पृ. 29
31. बाबू गुलाबराय–प्रबंध प्रभाकर, पृ. 29
32. विजयेन्द्र स्नातक–विचार के क्षण, पृ. 13
33. मैथिलीशरण गुप्त–भारत भारती, पृ. 10
34. डॉ. देवराज–भारतीय संस्कृति, पृ. 25
35. बाबू गुलाबराय–प्रबंध प्रभाकर, पृ. 26
36. डॉ. गणपति चंद्र गुप्त–साहित्य की आकर्षण शक्ति, पृ.31

कमलेश्वर : व्यक्तित्व और कृतित्व : एक विश्लेषण

व्यक्तित्व

किसी भी व्यक्ति या साहित्यकार को उसके जीवनवृत से नहीं समझा जाता बल्कि उसे उसकी व्यक्तिगत रुचियों, आदतों और प्रतिक्रियाओं के साथ उसके परिवेश और सृजन से समझा जा सकता है। व्यक्ति वह नहीं जो बाहर से दिखता है, अपितु असली व्यक्ति वह है, जो आदमीनुमा शक्ल का खोल ओढ़कर अपने भीतर एक आदमी को लिए चलता है। वह तथ्य एक सामान्य व्यक्ति से लेकर प्रतिष्ठित कलाकार तक पर लागू होता है।

जन्म एवं पारिवारिक परिवेश

हिन्दी साहित्य में गत पाँच–छह दषकों में नए कहानीकारों एवं उपन्यासकारों का प्रादुर्भाव हुआ। उन्हीं नए लेखकों में एक नाम निरंतर उभरता चला गया, जिसने हिन्दी साहित्य को नयी कहानी एवं समांतर कहानी आंदोलन से जोड़ा, आम आदमी का स्वर, उसकी पीड़ा, उसकी त्रासदी को अपने साहित्य में उकेरा। सत्ता से लेखकीय संपादकीय स्तर पर निरंतर जूझता रहा। एक अनवरत संघर्ष और तीखा प्रहार करना, यही उसकी मानसिकता और नैतिकता का परिचायक है। उसी चर्चित साहित्यकार का नाम था–'कमलेश्वर'। कमलेश्वर का पूरा नाम 'कमलेश्वर प्रसाद सक्सेना' था घर में माँ उन्हें प्यार से 'कैलाश' के नाम से बुलाती थी। कमलेश्वर का जन्म 6 जनवरी, 1932 को उत्तर प्रदेश के कस्बा 229, कटरा मोहल्ला, मैनपुरी में हुआ था। कमलेश्वर 'प्रश्नों का प्रजातंत्र' विषयक लेख में प्रथम पंक्ति लिखी थी–''बहुत विनम्रता से यहाँ कुछ बातें कहना।'' इतना लिखा कि बस सीने में दर्द उठा। अस्पताल पहुँचते तब तक शांत हो गए। 27 जनवरी, 2007 को रात्रि 10 बजे कमलेश्वर ने इस असार

संसार से विदा ली। छोड़ गए अपनी यादें, मुलाकातें और रचना संसार।

कमलेश्वर जब तीन वर्ष के थे तभी उनके पिता को ह्रदयाघात हो गया था। इतनी छोटी सी उम्र में ही उन्हें पिता के स्नेह व छत्रछाया से वंचित होना पड़ा। यह महज संयोग ही है कि पिता की भाँति कमलेश्वर का निधन भी ह्रदयाघात से ही हुआ। पिता के पश्चात् कमलेश्वर के परिवार पर मानो वज्रपात हो गया हो। एक जमींदार घर अब वास्तविक जमीन पर आ गया। अपने पिता को बार–बार उस कुएँ पर ढूंढ़ने जाते जिसकी जगत् पर बैठे पिता जगदम्बा की मृत्यु हुई थी।

यद्यपि कमलेश्वर पिता के साये से तो वंचित रहे तथापि माँ का साया उनके सिर पर सदैव बना रहा। माँ के स्नेह एवं प्यार से वंचित नहीं रहे। मुनष्य के जीवन की एक महत्वपूर्ण अवस्था होती है– बाल्यावस्था। यही वह नींव है जिस पर भविष्य की इमारत खड़ी होती है। बाल्यावस्था वह अवस्था है जब मनुष्य अपने–पराये, सुख–दुःख आदि भावनाओं से पूर्णत मुक्त या स्वतंत्र होता है। परंतु बालक कमलेश्वर को बचपन से ही अकेलेपन की घुटन और सुख–दुःख की कई विकट परिस्थितियों से गुजरना पड़ा। एक अमीर कहे जाने वाले घर में गरीब की तरह रहना... खाना खाकर भी भूखा उठना, अकुलाहट भरे दुःखों के बीच भी हँस सकना, बच्चा होते हुए भी वयस्कों की तरह निर्णय ले सकना, यह मेरी आदत नहीं मजबूरी थी।[1]

कमलेश्वर बचपन में कभी अपने मन की इच्छाओं को पूरा नहीं कर पाये। इस प्रकार कमलेश्वर का बचपन अकेलेपन की विवशताओं से जकड़ा हुआ था और इतनी छोटी उम्र में ही इन्हें अपनी इच्छाओं को दफन होते हुए देखना पड़ा। जो बचपन में ही भविष्य को जीत लाने के सपने देखने लगे। उसके लिए हम कह सकते हैं कि न जाने ये कैसी परिस्थितयाँ रही होगी जिसने एक बच्चे को युवा बना दिया। कम बोलने या किसी से न बोलने की नींव जो बचपन में ही

कमलेश्वर के मन में बन गई थी, वह युवावस्था तक इसी प्रकार बनी रही।

कमलेश्वर सहित इनके माता–पिता के ये सात संतानें थी। कमलेश्वर सबसे छोटे थे। साम में से कमलेश्वर एवं इनसे बड़े भाई मन्ना दादा, माहेष्वरी प्रसाद एवं सिद्धार्थ बचे थे, शेष सबकी असामयिक मृत्यु हो गयी थी। मन्ना दादा जो भविष्य की तलाश में उस छोटे से कस्बे से निकल चुके थे और वर्तमान से जूझ रहे थे। मन्ना दादा से छोटे व कमलेश्वर से बड़े भाई सिद्धार्थ से कमलेश्वर का जीता–जागता रिश्ता था। सिद्धार्थ कमलेश्वर के बड़े भाई कम व दोस्त अधिक थे। सिद्धार्थ बहुत होनहार और लेखक के लिए मार्गदर्शक थे अठारह वर्ष की उम्र में सिद्धार्थ का साया उठ गया कमलेश्वर उस समय बारह वर्ष के थे। सिद्धार्थ की तस्वीर–भर पास रह गयी। भविष्य से हमारा संबंध टूट गया।[2] अब बड़े भाई माहेष्वरी प्रसाद जो रेलवे में ड्राईंग इंजीनियर थे और कमलेश्वर के बच्चे थे।

कमलेश्वर का परिवार बाहरी स्तर पर अमीरी स्तर का कहलवाने वाला अंदर से गरीब था। इसका अंदाजा यही से लगा सकते हैं कि– जिस परिवार में एक छोटा बच्चा अपनी एक इच्छा को भी पूरी न कर सके, जिसे एक छोटी से छोटी चीज से वंचित रहना पड़े ऐसे परिवार को अमीर नहीं कहा जा सकता उसके तो गरीब परिवार ही कहा जा सकता है। इस दहकते बयान को कमलेश्वर अभिव्यक्त करते हैं–''एक आने की रबर या पटरी के लिए माँ से पैसे माँगते हुए मुझे दहशत होती थी, क्योंकि माँ बेबसी से झुँझलाया करती थी। तीन–तीन दिन में भूगोल की कक्षा में नही जा पाता था, क्योंकि बाबूराम जैन की दुकान से दुनिया का नक्षा खरीदने के लिए माँ से कुछ भी कहने को मेरी हिम्मत नहीं पड़ती थी।''[3]

परिवार की आर्थिक स्थिति कमजोर होने के कारण कभी उन्होंने नयी किताबें खरीदकर नही पढ़ी, स्कूल की फीस जमा करवाने की तंगी तो हमेशा बनी रहती थी ''मुझे आज तक अफसोस है कि मैं

अपने पढ़ने के लिए नयी किताब नहीं खरीद पाया। जब मेरे साथ के लड़के अपने पिता या बड़े भाई के साथ किताबों की दुकानों पर जाकर कोर्स की नयी–नयी किताबें और कापियाँ खरीदते थे, तो मेरी आँखों में आँसू आ जाते थे ...मेरे साथ कोई नहीं होता था।''[4] दुष्यंत कुमार ने भी इस अभाव की स्थिति को बयां किया है–''वह एक छकड़ा साइकिल पर यूनिवर्सिटी आया करता था और तलब लगने पर किसी झाड़ी के पीछे या एकांत कोने में छुपकर बीड़ी–सिगरेट पिया करता था। शायद हर महीने उसका नाम फीस जमा न करने वाले 'डिफॉल्टर' छात्रों की लिस्ट पर रहा करता था।''[5]

ज्वालामुखी के समान ये दिन लेखक की परीक्षा की घड़ी के दिन थे, अभाव और तंगी के दिन थे–''मेरी जिंदगी के ये दिन ज्वालामुखियों की तरह धधकते दिन भी थे और प्रलय के जल प्लावन के दिन भी थे ....सुबह पता नहीं होता था कि रात कैसे बीतेगी और रात मालूम नहीं होता था कि सुबह क्या होगा। भूख भी उन दिनों सिर्फ सोचने से लगती थी, नहीं तो नहीं लगती थी।''[6] मूलभूत आवश्यकताओं की वस्तुएँ भी दूर होती जा रही थी। वस्त्र निश्चित थे–''हालत इतनी बदत्तर कि मैंने अपनी तीनों सूती पैंटे और चार कमीजे तहाकर रख दी थी क्योंकि उन्हें धोने में साबुन ज्यादा लगता था और आयरन के पैसे भी ज्यादा पड़ते थे, जिसे मैं एफोर्ड नहीं कर पाता था। इसलिए पैजामा कुरता सस्ता पड़ता था। जूते भी एक कोने में टिका दिए थे और चप्पलें पैरों में आ गयी थी।''[7]

परिवार में कमलेश्वर की माँ शान्ति देवी, इनके पिता की दूसरी पत्नी थी। शान्ति देवी में दिखावे की प्रवृत्ति अधिक थी। अपने बेटे कैलाष 'कमलेश्वर' के बारे में मजबूरन कंजूसी बरत रही थी। अपनी इज्जत या प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए समाज के लोगों पर दिल खोलकर खर्च करती थी– ''कहीं नामोशी न हो, यह उसे हमेशा ख्याल रहता था और वह अपना और मेरा, पेट काट–काटकर भी किसी भांजे या पोते या नाती के लिए सौगातें देने जाती थी। संक्रांति

तथा दूसरे धार्मिक पर्वो पर पंडित जी के लिए भर–भरकर परात अन्न भेजती थी और शादी–ब्याहों में 'अपने पुराने घर' की शान के अनुरूप व्यवहार के जोड़े या रुपये भिजवाती थी। सावन में पीहर लौटी हुई मुहल्ले की ब्याहता लड़कियों के लिए लम्बे बरामदे में झूला डालती थी और उन्हें अपनी बच्चियों की तरह खिलाती–पिलाती और विदा करती थी।''[8] गली–मुहल्लेवालों को कभी अनदेखा नहीं किया। उनके हर दुःख–दर्द में कमलेश्वर की माँ ने पूरा–पूरा साथ दिया। उनकी प्रत्येक मुसीबत में साथ खड़ी होती थी। मुहल्ले वालों के टूटे दिलों घावों पर मरहम लगाती और रात को कमरे में बैठकर चुपचाप रोया करती थी।

कमलेश्वर ने परिवार के स्तर एवं घर की स्थिति को कुछ इस तरह स्पष्ट किया है– ''बरसात आते ही माँ बहुत परेशान रहने लगती थी। पता नहीं किसके घर की छत बैठ जाय, कौनसी दीवार भहरा–पड़े ..... कहने को हमारी जायदाद थी, पर जायदाद में एक ईंट बइलवाने की हिम्मत नहीं पड़ती थी। बरसात में कुछ किरायेदार अपने पैसों से मकानों की मरम्मत करा लिया करते थे और वह चार–चार महीनों तक आमदनी बिल्कुल बंद हो जाया करती थी और हमारे जोड़ों के कपड़े हर साल बनते–बनते रुक जाया करते थे।''[9]

कमलेश्वर ने आर्थिक तंगी की बात हमेशा कही है और यह वास्तविकता है। उन्होंने एक पत्र में अपनी पत्नी गायत्री को भी कहा है–''लेखक होने की यह मजबूरी शायद मेरा पीछा नहीं छोड़ पाएगी।''[10] आज किस लेखक कमलेश्वर को हम देखते हैं, तो विश्वास नहीं होता कि इतनी भयानक परिस्थितियों से निकलकर आया यह साहित्यकार जीवित कैसे रहा। परंतु यही उनके लेखन एवं जीवन की ताकत रही।

शिक्षा, नौकरी एवं विवाह

शिक्षा : कमलेश्वर को बचपन में शिक्षा का उचित वातावरण नहीं मिला। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा मैनपुरी में हुई यहाँ अध्यापकों की

उपेक्षा और पारिवारिक विपन्नता के कारण इनकी शिक्षा में निरंतर व्यवधान आता रहा। इनके अध्यापक बच्चों को निर्ममतापूर्वक पीटते थे। इनके साथ जब ऐसा व्यवहार किया जाता था, तो इनका शिक्षा से विमुख होना स्वाभाविक ही था। विमुख होने का एक अन्य कारण यह था कि स्कूल में मिली इनकी इनाम की राषि भेदभाव से दूसरों को दे दी जाती थी और फीस के लिए बेइज्जत किया जाता था। जब तक बड़े भाई सिद्धार्थ रहे तब तक भेदभावपूर्वक सरकार नीतियों को ललकारा परंतु सिद्धार्थ के पष्चात् जो हुआ उसे लेखक स्वयं बयां करते हैं – ''जब तक सिद्धार्थ थे, मेरी फीस आधी माफ हो जाती थी। पर उनके चले जाने के बाद कभी मेरी अर्जी मंजूर नहीं हुई..... आखिर मैंने सालाना में अव्वल आकर वजीफा लेने की ठान ली थी–क्योंकि छमाही में मैं अव्वल आ जाता था, पर सालाना में तहसीलदार, कोतवाल साहब या इंस्पैक्टर का लड़का ही अव्वल आया करता था। अव्वल आना मेरे लिए पढ़ाई की दृष्टि से उतने संतोष की बात नहीं थी, जितनी की आर्थिक विवशता के दृष्टिकोण से थी। आखिर मैं अव्वल आया पर वजीफे के रुपयों के लिए सिद्धार्थ मुझे मरते–मरते तक खत लिखकर पूछते रहे कि मिले या नहीं–पर उनके मरने तक मुझे मेरा वजीफा नहीं मिल पाया था और जब मिला था तो 'वारफंड' में आधे रुपये काट लिये गये थे।[11] इसलिए कमलेश्वर का बाल्यकाल और युवावस्था अनेक उतार–चढ़ाव लिये था। कभी आर्थिक–विपन्नता तो कभी राजनीतिक गतिविधियाँ इनकी शिक्षा को प्रभावित करती ही रही।

लेकिन फिर भी उनकी मेहनत और लगन ने उन्हें आज इस स्वर पर पहुँचा दिया और भविष्य में कुछ कर दिखाने का सपना बहुत हद तक उन्होंने पूर्ण भी किया।

कमलेश्वर ने हाईस्कूल की परीक्षा, राजकीय हाईस्कूल मैनपुरी से सन् 1946 में पास की। इण्टर मीडिएट के. पी. इंटर कॉलेज, इलाहाबाद से सन् 1950 में उत्तीर्ण की। विज्ञान स्नातक–भौतिकी,

रसायन व गणित विषय से 1952 में उत्तीर्ण की। विज्ञान स्नातकोत्तर (एमएससी) में कम प्रतिशत अंक होने से दाखिला न मिला। बड़े भाई इंजिनियरिंग के लिए निश्चित किया। प्रवेष परीक्षा भी पास कर ली। परन्तु अचानक कमलेश्वर साहित्य में एम.ए. करने की बात बड़े भाई से कही। भाई नाराज हुए और बताया कि तुम रास्ता चुन रहे हो वह बहुत कठिन है। अपनी पढ़ाई का खर्चा भी नहीं निकाल पाओगे। ऐसी स्थिति में एम.ए. हिन्दी विषय लेकर इलाहाबाद विष्वविद्यालय से सन् 1954 में उत्तीर्ण की।

उनके रुचिकर विषय–भौतिकी, रसायन शास्त्र, गणित, अर्थषास्त्र, भूगोल और हिन्दी रहे। यही उनके अध्ययन के विषय भी रहे हैं। इसी कारण वे बहुमुखी बने।

नौकरी/व्यावसायिक गतिविधियाँ

कमलेश्वर के परिवार की आर्थिक–दषा पतली थी। इसलिए अध्ययन करते समय एवं शिक्षा पूर्ण करने के बाद अपनी जीविका के लिए कुछ ऐसे कार्य भी करने पड़े जो बेहद अविश्वसनीय लग सकते हैं। उन्होंने जो भी कार्य किए प्रत्येक कार्य को अपने मूल्यों और सिद्धांतों के अनुसार किया। किसी भी कार्य में कहीं भी लगता कि सिद्धांतों के प्रतिकूल वातावरण बन रहा है। उसे अलविदा कहते समय नहीं लगाते। इन कार्यो में दूरदर्शन के अतिरिक्त महा निदेशक, 'सारिका', 'नई कहानियाँ' एवं 'दैनिक जागरण' के संपादक पद पर रहे परंतु जब कोई विवाद हुआ, तुरंत इस्तीफा सौंपकर चले आए। अपने उसूलों से जीये। जो कार्य किया अपने दिल–दिमाग और पूरी तल्लीनता से किया। मन ऊब गया तो चल दिये। उसकी कीमत भी चुकानी पड़ी। गरीबी के भी दिन काटे। एक समय भोजन किया। लेकिन हाथ पसारना कभी नहीं सिखा। कमलेश्वर द्वारा किये गए प्रमुख कार्य एवं नौकरियों का विवरण निम्नलिखित हैं–

1. प्रकाष प्रेस मैनुपरी में प्रूफ–पठन और स्थानीय पत्र में यदा–कदा लेखन करना।
2. 'जन क्रांति' (कानपुर–इलाहाबाद) में अवैतनिक कार्य और विधिवत् लेखन कार्य जारी।
3. 'बहार' मासिक (इलाहाबाद) में मात्र पचास रुपए मासिक वेतन पर संपादक कार्य।
4. शहनाज आर्ट साइनबोर्ड पेण्टर्स (इलाहाबाद) में साइनबोर्ड पेंटिंग अनियमित वेतन पर कार्य।
5. 'राजा आर्ट' (इलाहाबाद) में कागज के डिब्बों आदि की डिजाइनें तैयार करने का अनियमित वेतन पर कार्य।
6. 'बुक बाण्ड' चाय गोदाम (इलाहाबाद) पर अन्य नाम से रात–पाली में चौकीदारी करना।
7. 'कहानी' मासिक (इलाहाबाद) में एक सौ रुपए मासिक पर कार्य।
8. राजकमल प्रकाषन (इलाहाबाद) में एक सौ पचास रुपए मासिक पर साहित्य संपादन कार्य।
9. सेंट जोसफ सेमिनरी (इलाहाबाद) में भारतीय तथा विदेषी कैथोलिक ब्रदर्स के लिए एक सौ पच्चीस रुपए मासिक पर अध्यापन कार्य।
10. श्रमजीवी प्रकाषन का प्रारंभ। बत्तीस हजार का ऋण चढ़ने के कारण बंद करना पड़ा।
11. आकाशवाणी (इलाहाबाद) में दौ सौ पचहत्तर रुपए मासिक पर पटकथा लेखन।
12. दूरदर्शन (दिल्ली) में दो सौ पचहत्तर रुपए मासिक पर पटकथा लेखन।
13. 'नई कहानियाँ' (दिल्ली) का संपादन।

14. 'इंगित' साप्ताहिक (दिल्ली) का संपादन।
15. 'सारिका' (मुम्बई) का संपादन, जो एक मील का पत्थर साबित हुआ।

इनके अतिरिक्त आकाशवाणी के लिए लगभग सात सौ स्क्रिप्ट्स लेखन, दूरदर्शन हेतु लगभग ढाई सौ स्क्रिप्ट लेखन। दिल्ली दूरदर्शन से समाचार तथा अन्य कार्य{मों की प्रस्तुति। दूरदर्शन पर साहित्यिक कार्य{म 'पत्रिका' का आरंभ आकाषवाणी एंव दूरदर्शन पर आंखों देखा हाल। भारतीय दूरदर्शन हेतु पहला कथाचित्र 'पंद्रह अगस्त' का निर्माण। इनके अतिरिक्त कमलेश्वर ने देश की ज्वलंत समस्याओं का दूरदर्शन के लिए चल चित्रों पर फिल्म निर्माण। यथा, भिवंडी (महाराष्ट्र) में हुए हिन्दू–मुस्लिम दंगों पर फिल्म–निर्माण। बंगलादेश के मुक्ति संग्राम में बीस मुक्तिवाहिनी के साथ कानपुर में दहेज के कारण एक ही परिवार की तीन बहनों द्वारा फाँसी लगाने पर दूरदर्शन पर वृत्त चित्र बनाकर प्रस्तुत। जनता सरकार के 10–3–90 को 100 दिन पूरे होने पर पूरा देश क्या सोचता है। इस पर टेलीविजन में एक रिपोर्ट प्रस्तुत की। जवाहरलाल नेहरू, लाल बहादुर शास्त्री, मदर टेरेसा, इंदिरा गांधी, राजीव गांधी की अंतिम यात्रा एवं स्वतंत्रता व गणतंत्र दिवस पर टेलीविजन एंव आकाशवाणी से सजीव कमेंट्री प्रस्तुत की है।

हिन्दी फिल्मों के लिए कहानी, संवाद, पटकथा लेखन। स्वतंत्र रूप से कहानी, उपन्यास, आलोचना, नाटक, नाट्य रूपांतर संपादन तथा लेखन–कार्य करके अपनी आजीविका के साथ–साथ अपने लेखक को भी सबल बनाने में कमलेश्वर सतत प्रयासरत रहे हैं। 'गंगा' पत्रिका (दिल्ली), 'जागरण समाचार–पत्र' दैनिक के संपादक (दिल्ली) तथा दैनिक भास्कर (जयपुर) राजस्थान संस्करण के प्रधान संपादक रहे हैं। मृत्युपर्यंत कमलेश्वर दूरदर्शन, फिल्म–लेखन के साथ पत्रकारिता के लिए स्तंभ लेखों में व्यस्त रहे थे। दूरदर्शन में इनकी

पहचान का दस्तावेज 'परिक्रमा' कार्यक्रम सन् 2003 से पुनः आरम्भ होकर अब बंद हो गया। यह कमलेश्वर की प्रतिभा का एक नया रूप था।

व्यक्तित्व विश्लेषण

अब तक कमलेश्वर की कहानी का वह भाग विवेचित हुआ है जो उनके जन्म, मरण, विवाह, परिवेश और शिक्षा व नौकरी से संबंधित है। एक रचनाकार का असली व्यक्तित्व तो तब निखरता है जब वह जिंदगी की जिम्मेदारियों को स्वीकार करता हुआ स्वतंत्र चिंतन को विकसित करता है। उसकी सृजना ही व्यक्तित्व का सही परिचायक होता है।

मनोविज्ञान के अनुसार व्यक्ति को जो कुछ प्राप्त है और जो कुछ वह होने जा रहा है, वह उसके व्यक्तित्व में निहित संवेज्ञात्मक तथा मानसिक रचना आदि का समावेश होता है। व्यक्ति का संपूर्ण अनुभव, प्रत्यक्ष ज्ञान, स्मृति, कल्पना और मूल प्रवृति आदि स्थायी भाव तथा विचार व्यक्तित्व के अंग है। रुचि, जीवन, ढाँचा, आस्था, निष्ठा व्यक्तित्व के रूप रंग हैं। यहाँ तक कि वेषभूषा, पाचन शक्ति, कार्य व्यापार, और बोलने का क्रम व ढंग भी व्यक्तित्व का ही अंग है। जी 'डब्ल्यू' अलपोर्ट के अनुसार–"व्यक्तित्व व्यक्ति के मनोदैहिक गुणों का गत्यात्मक संगठन है जो वातावरण के प्रति घटित होने वाले उसके अभियोजनों का निर्णय करता है।"[16] वस्तुतः व्यक्तित्व व्यक्ति के से पूर्ण मानसिक और शारीरिक संगठन का नाम है।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक 'मन' ने व्यक्तित्व को परिभाषित करते हुए ठीक ही लिखा है कि–"एक व्यक्ति के कार्य–व्यवहार के रूपों, रुचियों, सामर्थ्यो, योग्यताओं तथा अभिवृत्तियों के सबसे अधिक लाक्षणिक संकलन को व्यक्तित्व कहा जा सकता है।"[17] सामान्यतः व्यक्तित्व में बाह्वय और आंतरिक गुणों का समावेश होता है। बाह्य व्यक्तित्व में व्यक्ति की वेषभूषा, शारीरिक संरचना और चार ढाल आती

है तो आंतरिक व्यक्तित्व में उसके अंतर का विश्लेषण शामिल है। मनोवैज्ञानिक के अनुसार भी व्यक्तित्व में व्यक्ति के बाह्य और अंतर का योग रहता है।

सामान्यतः व्यक्तित्व और चरित्र को एक समझ लिया जाता है। चरित्र व्यक्तित्व का परिणाम है। एक प्रकार से हम जो आचरण करते हैं, जिन व्यवहारों को अपनाते हैं वह सब हमारे व्यक्तित्व से ही निष्पन्न होता है। चरित्र परिर्वतनशील है। हमारे आचरण में औचित्य की कितनी मात्रा है? हम किन आदर्षे और मर्यादाओं का अनुसरण करते हैं आदि बातें चरित्र के अंतर्गत आती है। भले–बूरे की मान्यता सदैव एक–सी नहीं रहती है। जो आज भला आचरण है, कल की मान्यता के अनुसार वही बुरा और जो बुरा है वही भावी मान्यताओं और संदर्भो में अच्छा भी प्रमाणित हो सकता है। यही कारण है कि मनोविद् चरित्र की अपेझा व्यक्तित्व का विश्लेषण उचित समझते हैं। सफल और सार्थक समायोजन व्यक्तित्व की पहली विशेषता है। आचरण व्यक्तित्व को विष्लेषित करने वाला प्रमुख तत्व है। अतः कह सकते हैं कि हमारे आचरण में शारीरिक, मानसिक तथा संवेगात्मक गुणों का एक अनूठा सम्मिश्रण व्यक्त होता है। उसकी अनेकता में एकता और सुव्यवस्था सन्निहित है। इसी को व्यक्तित्व की अमिधा प्राप्त है। स्पष्ट व्यक्तित्व में स्वरूप स्वास्थ्य, शारीरिक संरचना, बुद्धि, ज्ञान, अनुभव, आदतें, स्वभाव, आस्थाएँ, अभिवृत्तियाँ तथा विश्वास व व्यवहार आदि के घटक समाहित है। इन सभी का योग व्यक्तित्व है। चरित्र व्यक्तित्व का समाजीकरण और बौद्धिक संरचरण की अवस्था है। यह व्यक्तित्व का उद्‌बोधक है। व्यक्तित्व में व्यक्ति है–पूरा व्यक्ति, और है उसकी सामाजिक अंतर्किया। व्यक्तित्व में व्यक्ति की चेतना उसकी सामाजिकता और परिस्थितियों के अनुसार नयी–नयी निर्मितियों का भी योग रहता है। दूसरों के संपर्क में आकर व्यक्ति यदि अपने आपको जान पाता है तो उसके कार्य–व्यवहार से दूसरे व्यक्ति उसे जानते हैं और समझते हैं इस विश्लेषण से स्पष्टतः दो

तथ्य सामने आते हैं, एक तो यह कि मनुष्य का बाह्य व्यक्तित्व यदि बाह्य जगत् को प्रभावित करने की क्षमता रखता है, तो उसका आंतरिक व्यक्तित्व दूसरों के मनोजगत् को प्रभावित करता है। पूर्ण सामाजिक प्रभाव के लिए बाह्य और आंतरिक दोनों ही व्यक्तित्व महत्व रखते हैं। दूसरा महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि व्यक्तित्व परिस्थितियों, वंषानुक्रम और समाज से प्रभावित होकर नये–नये रूपों में हमारे सामने आता रहता है।

बाह्य व्यक्तित्व

प्रत्येक व्यक्ति के बाहरी चरित्र में कुछ न कुछ विशेषताएँ अवष्य होती हैं। जो हमें अपनी ओर आकर्षित करती हैं। इसी से ही उनके संपूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण होता है। कमलेश्वर का व्यक्तित्व अपनी ओर आकर्षित करने वाला रहा है –''लेखन में असाधारण होते हुए भी वह बिलकुल साधारण– सा इंसान है– औसत से कुछ छोटा कद और सांवला रंग। नाक–नक्ष तीखे और आँखों में ऐसा आकर्षण के जिधर से देखिए, बँधते चले जाइये।''[18]

संघर्षो की भट्टी में गुजरकर निकला वह हीरा संपूर्ण साहित्य को सुवासित एवं दिप्त करता रहा। आर्थिक विपन्नता, अभाव आदि के कारण कभी उसके चेहरे पर क्रोध के भाव नहीं आते थे। कमलेश्वर के परम मित्र दुष्यंत कुमार लिखते हैं–''वह बहुत सादा, सरल और शांत था। वह बेहद बेरहम संघर्षो के बीच से गुजर रहा था पर उसके चेहरे पर एक भी षिकन नहीं होती थी। मुझे भी यह पता था कि उसके पास चार जोड़ों से ज्यादा कपड़े नहीं है। पर उसके कपड़ों पर एक भी धब्बा नहीं होता था। वह एक छकड़ा साइकिल पर यूनिवर्सिटी आया करता था।''[19]

कमलेश्वर बेहद खुशदिल और मिलनसार आदमी थे। खुशमिजाज इतने थे कि लतीफों और चुटकलों की फलझड़ियों से वह महफिलें गुलजार रखते थे। दुष्यंत कुमार उनके संपूर्ण बाहरी व्यक्तित्व

को लेखनबद्ध करते हैं–''रेडियो और टेलीविजन में नौकरी कर चुकने के कारण उसकी जुबान, जो पहले भी मधुर थी, अब सधकर और मीठी हो गयी है। सुरुचि उसकी विशेषता है। पैसा उसके पास टिकता नही है। पास के पास किसी को देकर अपनी जरूरत के लिए पच्चीस रुपये के इंतजाम के सिलसिले में वह परेशान– हाल घूमता हुआ मिल सकता है। वह दोस्ती की महफिल में मिल सकता है, किसी बीमार के सिरहाने बैठा हुआ भी मिल सकता हैं, किसी सस्ती सी दुकान में चाय पीता हुआ बड़े होटल में नफासत से खाता हुआ भी मिल सकता है। वह दूसरों के दुःख में दुःखी, उनकी परेशानियाँ सुलझाता और अपने दुःखों में हँसता हुआ भी मिल सकता है। घर पर मिलना चाहें तो रात दो बजे के पहले नहीं मिल सकता।''[20]

कमलेश्वर के व्यक्तित्व का एक महत्वपूर्ण पहलू है। फक्कड़पन। वह अपनी इस प्रवृति के कारण साहित्यकारों में एक विशिष्ट छवि रखते हैं। इस संदर्भ में राजेन्द्र यादव का कथन है–''लिखते–लिखते उठेगा, गुड्डो को ऊपर नीचे झुलाएगा, रसोई में जाकर दो–चार कौर कुछ चबाएगा और फिर आकर लिखने लगेगा...। बातें करते–करते एकदम उठेगा, सिगरेट का धुआँ छोड़ता हुआ कमरे से उस कमरे में फिरेगा, खिड़की पर खड़ा होगा, फिर बातें करने लगेगा ....। रात को ग्यारह बजे सिगरेट लेने 'गली के कोने' तक जाएगा। आप प्रतीक्षा करते रहेंगे और वह दो बजे लौटकर पढ़ता हुआ सो जाएगा।''[21] यह फक्कड़पन कमलेश्वर के व्यक्तित्व को और अधिक मुखर बनाने में सहायक रहा है। दूसरे व्यक्ति को प्रभावित करना, उसके अपने से सहमत कराना कमलेश्वर के व्यक्तित्व का सहज गुण था। कमलेश्वर के घोर विरोधी भी इसके व्यक्तित्व के इस गुण के कारण सहज ही पराजित होते देखे जा सकते हैं–''घोर विरोधी को भी वह अपने व्यक्तित्व की सहजता, सौजन्य बुद्धि और अपनी आँखों के विश्वास से पराजित कर लेता है। वह अहंवादी नहीं है, कुण्ठित नहीं है, उसमें

एक सहज अपनापन है।''[22] अपने इस विशिष्ट गुण के कारण ही कमलेश्वर निरंतर विलक्षण होता चला गया।

आंतरिक व्यक्तित्व

कमलेश्वर अपनी बाहरी चमक–दमक और 'स्टारत्व' के बावजूद बेहद पारिवारिक और भावुक व्यक्ति था। वह आज्ञाकारी पुत्र, परिश्रमी, स्वावलम्बी, संवेदनशील, प्रेमी हृदय, दोस्त परवर, ईमानदार, करुण हृदयशील था। अपनी अकेली बिटिया मानू (ममता) को बहुत प्यार करता था। उसके बच्चों पर जान छिड़कता था। मित्रों से भी जब मिलता तो अपनी ऊष्मा से भिगों देता था। इस प्रकार कमलेश्वर के व्यक्तित्व के संबंध में निदा फाजली के शब्द बहुत हद तक उचित प्रतीत होते हैं–''हर आदमी में होते हैं, दस–बीस आदमीः देखना हो जब भी, कई बार देखिए..।'' हंस पत्रिका के अभिषेक कश्यप ने कमलेश्वर मृत्यु के पश्चात् उनकी इकलौती संतान मानू से मुलाकात की। यह मुलाकात कमलेश्वर की पारिवारिक जीवन के कुछ अंतरंग चित्र पेष करती है। इससे पता चला कि कमलेश्वर अपने परिवार की छोटी–से–छोटी जरूरतों का पूरा ख्याल रखते थे। और विभिन्न माध्यमों में काम करते हुए अपनी प्रोफेशनल जिंदगी के उतार–चढ़ावों, चुनौतियों, जद्दोजहद जय–पराजय का कोई विपरीत असर कभी अपने परिवार पर नहीं पड़ने दिया। अपनी सुंदर लिखावट की तरह परिवार का हर काम भी करीने से करते थे। जिस लगाव से वे अपने लिखे स्क्रिप्ट, कहानी, उपन्यास, स्तंभ–लेखों की अलग–अलग फाइलें बनाकर रखते थे, उसी लगाव से हरी सब्जियाँ खरीदते और काँट–छाँट कर उन्हें रसोई में सुव्यवस्थित करते थे। कमलेश्वर फिल्म, टेलीविजन और पत्रकारिता सरीखे दूसरे माध्यमों में सिर्फ इसलिए सफल नहीं हुए कि वे हिन्दी के विख्यात लेखक थे, बल्कि इसलिए कि उनका प्रबंध–कौषल लाजवाब था और समय–प्रबंधन की उन्हें गहरी समझ थी। उपन्यासकार ममता कालिया कहती हैं कि–''वाकई

कमलेश्वरजी की ऊर्जा अद्‌भुत थी। वे एक साथ इतनी सारी विधाएँ संभालते थे। लोग उनका नाम काम दोनों इस्तेमाल करना चाहते थे। ऊपर से उनकी प्रेमियों का दायरा इतना बड़ा था,यह थोड़ी देर उनके पास बैठकर आभास हो जाता। उनका मोबाइल बजता ही रहता। घर की कॉलबेल को भी चैन नहीं था। आगन्तुक अभी विदा नहीं हुए कि अगले आ जाते। बड़ी–सी बैठक भी छोटी पड़ जाती।''[23] ममता कालिया आगे लिखती है कि– ''कमलेश्वरजी संप्रेषण की दुनिया के आदमी थे। वे कभी किसी से पूरा संवाद बंद नहीं करते थे। एक न एक चैनल हमेशा खुला रहता।''[24]

कमलेश्वर का अपना जीवन–दर्षन था। वह बार–बार अपनी जगह बदलता नजर आता। उसमें फाकामस्ती, अलमस्ती, इरादे, हमदर्दी, दोस्ती, कहकहे, मेंढ़क मुद्रा में लेटकर लिखना, फर्श पर देषी तरीके से कार्य करना। आत्मीयता की बातें सब उनकी रीति के अंग थे।

कमलेश्वर के आंतरिक व्यक्तित्व को निम्नलिखित शीर्षकों से अभिव्यक्त किया जा सकता हैं–

दोस्त परवर

किसी भी व्यक्ति के जीवन में उसका पारिवारिक–सामाजिक वातावरण उसके मित्र संबंधी और साथ काम करने वाले व्यक्तियों का प्रभाव बहुत पड़ता है। कुछ व्यक्ति तो जीवन में बहुत ही प्रभावषाली और महत्वपूर्ण हो जाते है। इसी प्रकार कमलेश्वर के जीवन में कुछ विशिष्ट व्यक्तियों का स्ाीन अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। ये व्यक्ति कमलेश्वर के लिए सबल रहे–''पर मुझे सबल परम्परा के साथ–साथ मिले दुष्यंत, जितेन्द्र, ओमप्रकाश श्रीवास्तव, ओंकार, अजीत, वीरेन्द्र मेहंदीरत्ता, मार्कण्डेय, सतीष पांडे, बच्चन जी, रामकुमार वर्मा, भारती, रघुवंष, लक्ष्मीकांत वर्मा, अमृतराय, अश्क, शेखर जोशी जैस लोग – जिनमें बहसें भी हुई, लड़ाईयाँ भी लड़ी गई और अपनेपन की बेहद खूबसुरत घड़ियाँ भी बीती।''[25]

कमलेश्वर, दुश्यंत कुमार और मार्कण्डेय तीनों में गहरी दोस्ती थी। कमलेश्वर लिखते हैं कि–''हमारे वैचारिक या व्यक्तिगत झगड़े चाहे जितने भी चलते हो, चाहे जितने विकराल हो जाते हो, पर ये पारिवारिक रिश्ते कभी नहीं टूटते थे। हम चाहे हफ्तों एक–दूसरे से बात न करें लेकिन भाभी, माँ या दादा से संवाद कभी नही टूटता था।''[26] आगे अपने आत्मकथात्मक संस्करण में लिखते हैं–''दोस्ती के चिराग ने मुझे सबसे ज्यादा रोषनी दी है और मैं भाग्यशाली हूँ कि सारे दोस्तों ने अपनी दोस्ती का अनुपम साथ मुझे दिया।''[27] कथाकार, नाटककार और नयी कहानी के त्रयी के एक हस्ताक्षर मोहन राकेश और कमलेश्वर की दोस्ती जगजाहिर थी। पहली मुलाकात अंतिम समय तक बनी रही–''सन् 1956 में जालंधर स्टेषन के प्लेटफॉर्म पर राकेश से मेरी पहली मुलाकात हुई थी। यह पहली नजर की दोस्ती थी जो अंत तक निभती चली गई– राकेश की अंतिम साँस तक।''[28] कमलेश्वर ने अपनी माँ के समान राकेश की माँ को भी अपनी माँ माना। वह बार–बार यह लिखता है कि–''राकेश की माँ हम सबकी माँ।''[29] कमलेश्वर की धर्म पत्नी गायत्री देवी लिखती है कि–''राकेश भाई और कमलेश्वर जी बिल्कुल भाइयों की तरह रहते थे।''[30] दिल्ली में राकेश और कमलेश्वर एक साथ रहते थे। संयुक्त परिवार की तरह हम और राकेश पहली मंजिल पर एक साथ एक–एक कमरे में रहते थे। पीछे एक कोठरी थी, उसमें माँ (राकेश की माँ) रहती थी। खाना लगभग साथ–साथ बनता था।''[31] मोहन राकेश की मृत्यु का समाचार सुनकर कमलेश्वर ने गायत्री को जो कहा, वह उनकी गहरी दोस्ती का परिचायक है कि–''मेरा तो सीधा हाथ चला गया।''[32]

कमलेश्वर, मोहन राकेश के साथ तीसरे मित्र थे–राजेन्द्र यादव। नयी कहानी आंदोलन के समय बने संबंध कई उतार–चढ़ाव के अंत तक कायम रहे। राजेन्द्र यादव ने भी मोहन राकेश और कमलेश्वर के प्रगाढ़ संबंधों को स्वीकार किया है, उन्होंने कहा कि नयी कहानी के समय–''कमलेश्वर सैद्धांतिक रूप से कमजोर था, मगर भाषा और

बड़बोली मोर्चेबाजी में उसे महारत हासिल थी। वे दोनों साथ भी रहते थे, इसलिए सिद्धांत राकेश देता था उसे व्यावहारिक बनाकर पेष कमलेश्वर करता था।''[33] राजेन्द्र यादव और कमलेश्वर की मित्रता पर राजेन्द्र यादव प्रकाष डालते हुए कहते हैं–''कमलेश्वर से मेरा परिचय 'अश्क' जी के 'संकेत' से शुरू हुआ, जहाँ वह और मार्कण्डेय सहायक संपादक थे। मैंने 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' कहानी भेजी थी। अश्क जी ने तो उसकी तारीफ की ही कश्मीर से कमलेश्वर का भी एक पत्र उसकी प्रशंसा में आया। और फिर जो सिलसिला शुरू हुआ वह 'आदरणीय भाई' से होता हुआ 'तेरा बाप', कमलेश्वर तक आ गया।''[34] वे बेहद आत्मीयता के दिन थे।

कमलेश्वर और कृष्ण चंदर के संबंध कुछ ऐसे ही रहे उनसे पहली बार कमलेश्वर दूरदर्शन कार्यालय में मिले उस सयम कृष्ण चंदर ने जो कमलेश्वर को कहा उसे वह आज तक नहीं भूले वह था –''देखो, इस हिन्दुस्तान में लड़कियाँ तो बहुत मिलती है, मगर शादी के बिना नहीं मिलती। इसलिए जिस लड़की से शादी की है, उसी को अपना सबसे बड़ा हासिल समझना और सब्र करना।''[35] इस प्रकार से कृष्ण चंदर से आदर्शात्मक मुलाकात अंत तक चलती रही।

कमलेश्वर का वेटिंग रूम धर्म शाला बना रहता था। दोस्तों की कतार के बीच रहना उन्हें भाता था। गायत्री ने लिखा है कि–''इनके दोस्त घर की रौनक थे। सच पूछो तो ये सगे भाइयों की तरह थे। सब लोग हमेशा हँसते, हँसी–मजाक करते रहते थे। फोन पर भी घंटों बातें, ठहाके, चिट्ठियों में भी हँसी का कोई न कोई मसाला। हँसने के अलावा इन लोगों के पास कोई काम नहीं था।''[36] दुष्यंत कुमार से बनी इलाहाबाद की दोस्ती को आगे चलकर रिश्तेदारी में बदली। अपनी इकलौती संतान मानू का विवाह दुष्यंत के बेटे आलोक से किया। दुष्यंत के परिवार को अपना परिवार माना। संबंध मृत्युपर्यंत चलता रहा। इस प्रकार कमलेश्वर के दोस्त उनकी जान थे। मेरा–हमदम, मेरा दोस्त उसी श्रृंखला की एक कड़ी है।

संवेदनशील, करुण हृदयशील एवं भावप्रवण

कमलेश्वर स्वभाव से ही संवेदनशील, करुण, हृदयशील, भावप्रवण और गंभीर व्यक्ति रहे हैं। यह ऐसे गुण हैं जो उनके चरित्र को पूर्णता प्रदान करते हैं। इस संबंध में दुष्यंत कुमार लिखते हैं –"वह स्वभाव से अत्यंत संवेदनशील, भावप्रवण और गंभीर व्यक्ति हैं उसका मूल भाव करूणा हैं, सघन पूँजीभूत करूणा– जिसके कारण वह अपने व्यंग्य से भी अनुदार नहीं हो पाता, यहाँ तक की उसकी फबती से आपको कहीं जरा भी चोट पहुँची तो शायद पहला आदमी वहीं होगा जो तत्क्षण इस बात को भाँप लेगा और अवसर मिलते ही झिझकते हुए, आपका हाथ अपने हाथ में लेकर इस कदर प्यार से दबाएगा कि उसकी हथेलियों की ऊष्मा में आप असल कमलेश्वर को खोज निकालने में भूल नहीं करेंगे।"[37]

कमलेश्वर भावप्रवण मित्र, पिता और लेखक सभी रूपों में थे। वे बात–बात पर भावुक हो जाते। कभी तो फूट–फूटकर रो पड़ते थे। अभिषेक कश्यप को उनकी बेटी मानू ने बताया कि "उनका उपन्यास समुद्र में खोया आदमी जिसे दूसरे दिन छपने के लिए देना था, का पहला पन्ना मैंने फाड़ दिया था। तब वे बहुत गुस्सा हुए थे, मुझे बहुत डांटा था। मगर मुझे डाटने के बाद वे फूटफूटकर रोए थे, कि इसमें बच्ची का क्या दोष था? उसे क्या समझ? फिर खूब प्यार किया। इसी प्रकार राजेन्द्र यादव ने बताया कि विश्व हिन्दी सम्मेलन अवसर पर किसी बात को लेकर कमलेश्वर ने बहुत गालियाँ सुनाई। परंतु "दो घंटे बाद वह मेरे कंधे पर सिर रखकर रोया न होता तो शायद वही हमारी दोस्ती की आखिरी रात होती...."[38]

कमलेश्वर के व्यक्तित्व के संदर्भ में ऐसे तथ्य यकायक नहीं बने हैं, अपितु इनके पीछे एक आस्था, एक ठोस विश्वास और अगाध स्नेह की त्रिवेणी बहती है। कमलेश्वर एक भावुक मित्र हैं–"आज मोहन राकेश और दुष्यंत के मरने के बाद वह अपने को बेहद अकेला महसूस करता है। उसके मन में प्यार का विशाल समुद्र लहराता है।

जो भी मिले, वह कब उसका हो गया पता नहीं चलता। वह प्यार बांटता फिरता हैं, नफरत के लिए उसके दिल में कोई जगह नहीं है।''[39] उनकी भावुकता का खुला कैनवास चारों और समान–विस्तृत फैला हुआ था। आबिद सुरती भी इसी तथ्य की पुष्टि करते हुए कहते हैं–''कमलेश्वर एक 'नाजुक दिल' भी है। यह शायद बहुत कम लोग जानते होंगे। वे खुश होते हैं तो उसकी खुशी किसी से छुपी नहीं रहती। वे दुःखी होते हैं तो उसका चेहरा पोस्टर की तरह जाहिर कर देता है। क्या आप यह सोच सकते हैं कि कमलेश्वर जैसी शख्सियत दस लोगों के बीच भी एक मासूम बच्चे की तरह आँसू बहा सकती है।''[40] एक पैसा ही एक प्रसंग प्रसिद्ध साहित्यकार कन्हैयालाल नंदन ने बताया, जो उनकी भावप्रवणता को साबित करता है। प्रसंग यह था कि पिछला विश्व हिन्दी सम्मेलन सूरिनाम में हुआ, उस समय कमलेश्वर भारत सरकार के प्रतिनिधि मंडल के नेता बनकर गए। जब वहाँ रहने की माकूल व्यवस्था नहीं पाई, तो उन्होंने विदेश मंत्रालय के एक अधिकारी से कहा। अधिकारी ने स्पष्ट कहा कि रहने खाने आदि का खर्च खुद उठाना होगा। नंदन जी कहते हैं कि–''कमलेश्वर जी ने कहा–मैं खर्च भी उठा लूं लेकिन सुविधा तो उपलब्ध हो ....और अंतत। कमलेश्वर जी रो दिये।''[41] समस्याओं का निर्भिकता से सामना करने वाले कमलेश्वर कभी–कभी इस तरह अपने देश के नागरिकों द्वारा ऐसा अपमान सहकर बेहद भावुक हो जाते थे।

इस प्रकार कमलेश्वर के व्यक्तित्व का एक महत्वपूर्ण पक्ष यही करुण हृदयशीलता एवं भावुकता है। विश्व में धीरे–धीरे परिवर्तन होता गया परन्तु कमलेश्वर के इस गुण में कोई परिवर्तन नहीं आया था।

परिश्रमी एवं स्वावलम्बी

कमलेश्वर कर्म के सिद्धांत में पूर्ण विश्वास रखते थे। उन्होंने भाग्यवादी धर्मभीरू हिन्दू समाज को नई जागृति, प्रेरणा और शक्ति दी। परिश्रम वह शक्ति है जिससे प्रत्येक इंसान अपने को इंसान बना

सकता है। परिश्रम के सामने भाग्य भागता नजर आता है। दुष्यंत कुमार एक संस्मरण में कमलेश्वर के इस परिश्रम पर प्रकाष डालता है –''इलाहाबाद में वह प्रायः रोज रात के ग्यारह–बारह बजे तक मेरे साथ अन्य दोस्तों के साथ गप्पे लड़ाया करता था। घर जाकर खाना और डांट खाया करता था। रात को देर–देर तक लिखा करता था और सुबह फिर उसी ताजगी और उत्साह से दिनचर्या शुरू हो जाती थी। उसी चुस्ती और उल्लास से वह अपनी छकड़ा साइकिल उठाता, तीन मील उलटा चलकर मेरे पास आता, मेरे अहदीपन पर लानत भेजते हुए खुद चाय बनाता, फिर तीन मील यूनिवर्सिटी का सफर तय करता, दोपहर को सेंट जोजेफ्स सेमिनरी मे कैथोलिक पादरियों को पढ़ाने जाता, शाम को एक खास रास्ते से गुजरकर अपनी प्रेमिका से मिलता और फिर सिविल लाइन्स में दोस्तों से आ मिलता। इस तरह रोजाना बीस–बाइस मील का चक्कर काटकर रात को घर पहुँचता तो उसके दिमाग में केवल दो बातें होती– भाई साहब की प्यार भरी डांट और कहानी का प्लॉट।''[42]

कमलेश्वर की इस परिश्रमशीलता पर राजेन्द्र यादव दुष्यंत कुमार से कहा करता है–''यार, इस आदमी में कितना स्टैमिना है। दिनभर घूम सकता हैं, बैल की तरह काम कर सकता है, रात भर जागकर दोस्तों के साथ ठहाके लगा सकता हैं, फिर भी चेहरे पर थकान नहीं। जाने किस चक्की का पिसा खाता है।''[43]

आज हम कमलेश्वर को इस मुकाम पर पाते है। ''इस असाधारण सफलता का रहस्य है खुद अपने से टक्कर लेने की अशेष सामर्थ्य और मनोबल। रात भर जी–जान से लड़कर वह हर सुबह उठते ही एक नयी लड़ाई के लिए प्रस्तुत दिखता है।''[44] वे अपना काम स्वयं करते थे, कभी दूसरों के भरोसे नहीं रहे–''मुझे वे दिन याद है जब वह अपने आप में सर्वोदयी हो गया था। (विनोबा से भी पहले) साबुन बनाने से लेकर अपनी स्याही तक खुद बनाता था।''[45]

कमलेश्वर अपने अंतिम समय तक लिखते रहे और योजनाएँ बनाते रहे। राजेन्द्र यादव इसको बहुत परिश्रम साध्य मानते हैं–''आज मुझे सचमुच आष्चर्य होता है कि लेखन को लेकर कौन सी आस्था थी कि वह निरंतर लिखता ही नहीं रहा, बल्कि आगे लिखने की योजनाएँ भी बनाता रहा ...वह बैठकर, लेटकर किसी भी स्थिति में (कुर्सी, मेज को छोड़कर) कभी भी लिखता था। वह आखिरी वक्त तक उर्दू, हिन्दी का सम्मिलित इतिहास लिखने की योजना बना रहा था।[46] अपने अंतिम दिनों अस्वस्थ रहे तब भी आराम नहीं करके लेखन जारी रखते। मृत्यु से बीस दिन पूर्व ममता कालिया को गायत्री ने बताया कि– ''आज भी सुबह पाँच बजे उठकर दैनिक भास्कर के लिए कॉलम पूरा किया है।''[47] लिखने की प्रति उनका जुनून हमने पहले ही बताया है। यह सब उनकी परिश्रमशीलता का प्रतिफल था। शायद कमलेश्वर में यह भाव समाजवादी क्रांतिकारी पार्टी के समय से जन्मा हो। या फिर परिवार की स्थिति से उत्पन्न हुआ हो। बाद में यह उनकी रुचि का हिस्सा बन गया था।

आज्ञाकारी पुत्र

कमलेश्वर जब तीन वर्ष की उम्र के थे तब उनके पिता चल बसे थे। बड़े भाई नौकरी के कारण अक्सर बाहर रहते थे। इस कारण से वह अकेला रहता था। इस अकेलेपन को अपनी माँ के साथ रहकर तोड़ा। उन्होंने अपनी माँ की आज्ञा का सदैव पालन किया। वे माँ के आज्ञाकारी पुत्र थे। एक जगह कमलेश्वर ने स्वीकार किया कि माँ के कहने पर बाल कटवा लिये और कुछ नहीं बोला–''इलाहाबाद से मैनपुरी पहुँच गया था। घर पहुँचते ही माँ ने नाई को बुलाकर मेरे बाल कतरवा कर छोटे करवा दिये थे, क्योंकि उन्हें लम्बे–लम्बे पट्ठों से चिढ़ थी।''[48]

घर की आर्थिक स्थिति कमजोर होने के कारण अपने बड़े भाई सिद्धार्थ, जो अब मर चुके थे के कपड़े माँ सिलकर उसे शरीर के

अनुसार बनाकर सिलती थी और बिना मना किये उन कपड़ों को पहनना उनकी अद्भुत आज्ञाकारिता का नमूना है–''भविष्य को जीत कर लाने वाले मृत योद्धा के कपड़ों की सिलाई मैं खुद बैठकर उधेड़ा करता था ....ताकि माँ को दिक्कत न हो।''[49]

चपन से ही कमलेश्वर में संकोची प्रवृति प्रबल रूप से रही थी। जिसे स्वयं कमलेश्वर की माँ ने स्वीकार किया है। उनकी माँ ने ही दुष्यंत कुमार को बताया कि–''संकोची वह इतना था कि खाना भी भरपेट नहीं खा पाता था। कैलाश (घर का नाम) इतना संकोच करता है कि दुबारा रोटी तक नहीं माँगता ..मुझे जिंदगी में यह अफसोस हमेष रहेगा कि मेरे बेटे ने मुझसे ही कभी रोटी या पैसा नहीं माँगा।''[50] यह संकोच स्वभाव उनकी आज्ञाकारिता का एक रूप था। उसे अपने परिवार की स्थिति का मालूम था, तो उसकी नैतिकता बनती थी कि माँ को व्यर्थ परेशानी न दी जाए।

अपनी माँ के प्रति सेवा के जो भाव उनकी हृदय में था वह उनके गायत्री को लिखे पत्रों में देखे जा सकते हैं–''सेवा करने का सुख बड़ी शांति और शक्ति देता है, बाद में।''[51] कमलेश्वर की अपनी माँ और राकेश की माँ में कोई अंतर नहीं दिखता था। वे दोनों का आदर समान भाव से करते। दोनों की आज्ञा उनके लिए षिरोधार्य थी। यह महज संयोग था की 3 दिसम्बर, 1972 को दिल्ली में मोहन राकेश की मृत्यु हुई और इलाहाबाद में कमलेश्वर की माँ की मृत्यु 5 दिसम्बर, 1972 में हुई थी। अपनी माँ से इतना प्रेम था कि उनकी तस्वीर अपने लेखन कक्ष में बैड के ऊपर दीवार पर टांगकर रखते थे। जो भी कार्य करते माँ की मूक स्वीकृति के पश्चात् ही करते थे। उसके पश्चात् उन्होंने बड़ी भाभी को सदैव माँ का दर्जा दिया। वे संयुक्त परिवार के पक्षधर थे। एक बार पत्र में गायत्री को लिखा भी–''हमारे लिए दोनों ही (भाई–भाभी) बड़े और पूज्य हैं।''[52] इन वाक्यों से उनकी संयुक्त परिवार की प्राचीन भारतीय परम्परा की गंध आती है, जहाँ बड़े भाई पितृ तुल्य माने जाते थे। ममता कालिया ने

एक संस्मरण में लिखा है कि–''कमलेश्वर जी से कोई बात मनवानी हो तो उसका एक तरीका था कि बात उनकी भाभी के माध्यम से कही जाए। बस समझिए आपका काम हो गया। माँ के चले जाने के बाद कमलेश्वर जी ने भाभी को माँ का दर्जा दे रखा थ। उनके आगे कमलेश्वर जी एक आज्ञाकारी बालक बन जाते।''[53] वर्तमान में ऐसे संस्कार साधारण परिवारों से तो गायब ही हो गए हैं। इसके साथ लेखकीय परिवारों में भी लुप्तप्रायः है। इस अंधी प्रतियोगिता के युग में सब परिवार, माँ, पिता, भाई–भाभी आदि सबों को सीढ़ी बनाकर काम में लेते हैं, बस और कुछ नहीं। मानवीय मूल्यों के सच्चे पक्षधर थे – कमलेश्वर। तथाकथित वामधर्मी इन बातों को व्यर्थ मानते हैं। क्या कमलेश्वर वामधर्मी नहीं थे ? उन जैसा सच्चा, निर्भिक, ईमानदार शायद कोई वामपंथी लेखक हो यह केवल वैचारिक सोच में बदलाव का प्रतिफल है, जो इन रिश्तों को बेमानी मानते हैं।

प्रेमी हृदय

कमलेश्वर ने अपने बचपन के अकेलेपन को तोड़ने के लिए अपने से बड़ी उम्र की लड़की से प्रेम किया और वह लड़की भी उन्हें प्यार करती थी। यह बात अपने आत्मकथात्मक संस्मरण में स्वीकारी है–''घर में एकदम अकेला ही रहता था। कोई मेरी उम्र का नहीं था। अपने निकट अकेलेपन में मुझे एकाएक अपने से बड़ी उम्र की लड़की की निकटता मिली, और में चौबीसों घंटे उसके ध्यान में डूबा रहने लगा।''[54]

इस बात को कमलेश्वर के मित्र दुष्यंत कुमार ने लिखा है– ''उन दिनों वह कुछ–कुछ लिखा करता था–खासतौर से एक डायरी। एक लड़की थी जिसके बारे में वह कभी–कभी बात भी किया करता था। वह लड़की भी उसे चाहती थी। तब उसकी दुनिया बहुत छोटी थी।''[55]

कमलेश्वर अब 'कैलाश' की दुनिया से निकलकर इलाहाबाद में साहित्य के असली कमलेश्वर बनने के लिए हिन्दी साहित्य में एम.ए. करने के लिए प्रवेश लिया तो उनका विद्या नाम की लड़की से परिचय हुआ जो उनकी सहपाठी होने के साथ उनकी होने वाली पत्नी गायत्री के पितृशहर फतेहगढ़ से थी, से प्रेम बढ़ा। इस बात को दुष्यंत कुमार भी स्वीकार करते हैं कि–''शाम को एक खास रास्ते से गुजरकर अपनी प्रेमिका से मिलने जाते थे।''[56]

वाम धर्मिता

''मेरी कलम और मेरे वामधर्मी विचारों से बड़ी कोई चीज नहीं है।''[57] ये पंक्तियाँ कमलेश्वर को प्रतिबद्ध वामपंथी ठहराती है। जिस विचार से वे बचपन में बंधे उसको मृत्यु तक प्रतिबद्धता के साथ आयाम दिया। उनके लिए उनकी वामधर्मिता सर्वोपरि थी। उनकी मार्क्सवादी सोच पर लोगों ने संदेह किया तो अपने संस्मरण में उसका जवाब इस प्रकार दिया–''मैं मार्क्सवादी था और आज भी हूँ और यह सैद्धांतिक आसक्ति मेरी अपनी थी.... मेरे परिवेश के यथार्थ ने मुझे मार्क्सवाद से जोड़ा था ...भैरव प्रसाद गुप्त या नामवर सिंह ने नहीं।''[58] कमलेश्वर अपने समय की परिस्थितियों से टकराते रहे और उनमें एक वाद कायम हुआ अर्थात् प्रत्येक रचनाकार की भाँति वे भी 'वाद' से प्रभावित थे। जिसका उन्होंने स्वयं बयान किया है–''पूँजीवाद का तब कोई स्पष्ट राजनीतिक चेहरा या वैचारिक केन्द्र नहीं था। दक्षिणपंथ ही तब पूँजीवादी का विकलांग प्रवक्ता था, जो साहित्य में रचनावाद का समर्थक होकर उभरा था। वामपंथ उस समय परिवर्तन का प्रवक्ता था। वह साहित्य के कलावादी शाष्वतवाद से इंकार करता था पर शब्द की रचनात्मक गरिमा को पहचानते हुए, नश्वर कारणों के बीच से मनुष्य के समतामूलक शाष्वत भविष्य को रूपायित करना चाहता था।''[59]

कमलेश्वर वामपंथ के मानव हित और न्यायप्राप्ति का एक दर्षन मानते थे, सत्ता की सीढ़ी नहीं। कुछ लोगों जब वामपंथ से जुड़कर सत्ता के गलियारों तक पहुँचे तब लोगों ने कमलेश्वर पर शक किया कि वे भी सत्ता तक पहुँचने के वाद का सहारा ले रहे। परंतु उनके लिए वामपंथ सत्यरूप में मानवहित के लिए ही था। इतना होने के पश्चात् सन् 1991 में जब सोवियत रूस का विघटन हो गया, पूर्वी यूरोप में वामपंथ का गढ़ ढह रहा था तब किसी ने कमलेश्वर से पूछा कि अब तो आप वामपंथ के हटकर दूसरा रास्ता अपनाएंगे। अर्थात् मार्क्सवादी नहीं रहेंगे। तब उन्होंने जवाब दिया–''मैं सन् 1950 में भी मार्क्सवादी था और आज सन् 1991 में भी मार्क्सवादी हूँ। पूर्वी यूरोप और रूस में जो कुछ हो रहा है, उसके बावजूद क्योंकि मेरे लिए मार्क्सवाद एक सिद्धांत है, सत्ता नहीं। मार्क्सवाद सत्ता और व्यवस्था का प्रयोग जिन लोगों ने किया वे राजनीतिज्ञ थे, साहित्यकार या संस्कृतिकर्मी नहीं।''[60]

कमलेश्वर साहित्य के इतिहास को एक दोयम दर्जे का दस्तावेज मानते थे और आलोचकों को परजीवी। इससे कुछ तथाकथित प्रगतिशील आलोचक खिन्न होकर कमलेश्वर को फिल्म लेखक बताकर साहित्य से खारिज कर दिया। यह सब प्रगतिशील लेखकों का कमाल था। उसका जवाब कमलेश्वर ने इस प्रकार दिया हैं–''हमारी प्रगतिशीलता का स्वरूप तब इतना तानाशाही और विकृत हो गया था। हमारा साहित्य भी इस दोगली संस्कृति का शिकार हुआ। भीतर–भीतर सत्ता समर्थन और बाहर सत्ता विरोध। सत्ता–व्यवस्था को यह रिश्ता बहुत रास आता है।''[61] कमलेश्वर का यह कथन उस प्रसंग को लेकर है जब 'प्रगतिशील लेखक संघ के पंचमढ़ी लेखक शिविर में यह फतवा दिया कि कथालोचना में कमलेश्वर का उल्लेख न किया जाए और उसकी कहानियों पर चर्चा न की जाए।

स्वभाव एवं रुचियाँ

''मैं कभी बेहद खुश नहीं हुआ, कभी बेहद उदास भी नहीं हुआ। बड़े से बड़ा दुःख शांति से गुजर गया और बड़े से बड़ा सुख मुझे ज्यादा देर खुश नहीं रख पाया।''[62] अपने आत्मकथात्मक संस्मरण में स्वीकार किया कि कमलेश्वर की संतुलित भावानाएँ थी। सतत कर्मशील बने रहना उनका स्वभाव था। अपने सिद्धांतों के मुताबिक जीवन जीया। जब कभी नहीं हो गया तो उसका पालन अंत तक करते–''हालांकि मैं छोटे–छोटे मौकों पर कभी नहीं कह नहीं पाता, पर एक बार अगर मेरे अंतर्मन में 'नहीं' गूँज गया तो फिर मैंने कभी नहीं बदला। यह 'नहीं' मेरी अन्तर्शक्ति है। इस नहीं को मैं अपने लिए भी इस्तेमाल करता हूँ और इसका उपयोग मैंने बार–बार अपनी जिंदगी के अहम संदर्भो में भी किया। शायद यही वजह है कि मैं अपना जीवन अपने मुताबिक जी सका हूँ।[63]

इससे उनके निर्लिप्त स्वभाव की झलक मिलती है। धैर्य इतना कि कितना ही कठिन समय हो धैर्य नहीं खोते थे–''धीरज ही मेरे पास ऐसा गुण है जो मुझे हारने नहीं देता।''[64]

इज्जत करना और करवाना वे भली–भाँति जानते थे। जब तक मैनपुरी रहे या दिल्ली घर के या साहित्य के बड़े पुरोधाओं के सामने शर्म बहुत करते, ऐसा नहीं औरतों की तरह बल्कि उनकी गतिविधियों से दूसरे को ठेस न पहुँचे। गायत्री कहती हैं कि–''शरम–लिहाज–अदब इनके संस्कारों में इतना था कि बड़ों के सामने कभी सिगरेट नहीं पीते थे।''[65] कभी बेहद नास्तिक होते हुए भी अपने बच्चों एवं पत्नी के साथ मंदिर जाता परंतु बाहर खड़ा रहता। उनकी आस्तिकता पर टिप्पणी भी नहीं करता। दूसरों की भावनाओं को समझना, उनको इज्जत देना उनकी आदत एंव रुचि का एक अग था।

पशु–पक्षियों, फल–फूलों और प्रकृति की हरियाली से उनको बड़ा लगाव था। वर्षा–ऋतू से उन्हें विशेष प्यार था। ड्राईंग में उनकी

बहुत रुचि थी। 26 जनवरी, 2004 आउटलुक साप्ताहिक में उन्होंने लिखा था–''अब जब पीछे मुड़कर देखता हूँ तो सोचता हूँ कि मैं बहुत अच्छा चित्रकार हो सकता था।''[66] चित्रकार तो नहीं हुए परंतु हिन्दी की विविध विधाओं के चतुर–चितेरे अवष्य साबित हुए।

साहित्यकारों की नजर में कमलेश्वर :

बहु आयामी व्यक्त्वि के धनी कमलेश्वर के समकालीन अपने क्षेत्र में प्रतिष्ठा प्राप्त प्रमुख साहित्यकारों ने कमलेश्वर के अनेक रूप देखें। उनको अपनी–अपनी तरह से व्याख्यायित किया है। इसमें उनके मित्र भी शामिल हैं, तो उनको चाहने वाले भी, देखिए इनके वक्तव्य –

- **रवीन्द्र कालिया** : (साहित्यकार एवं संपादक, नया ज्ञानोदय) ''वह हिन्दी के अत्यंत सफल लेखक थे, उनसे बात करने पर यह भी नहीं लगता था कि आप एक सफल लेखक से बात कर रहे हैं। सत्ता के गलियारों तक उनकी अच्छी खासी पैठ थीं, मगर उन्हें वीसा प्राप्त करने के लिए जून की चिलचिलाती धूप में किसी दूतावास के सामने लगी लोगों की लम्बी कतार में देखा जा सकता था।''[67]
- **गोपीचंद नारंग** : (अध्यक्ष, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली) हिन्दी उर्दू के समान हस्ताक्षर कहते हैं कि–''उर्दू में प्रेमचंद युग के बाद कोई हिन्दी कहानीकार इतना नहीं पढ़ा गया जितना कि कमलेश्वर।''[68]
- **राजेन्द्र यादव** : (संपादक–हंस, एवं अभिन्न मित्र) कहते हैं कि–''मेरे और उनके बीच वैचारिक मतभेद थे, लेकिन हमारी दोस्ती 'महाभारत' की तरह थी। जब हम युद्धक्षेत्र में आ जाते थे तो किसी को नहीं बख्शते थे।''

राजेन्द्र यादव आगे लिखते हैं–''हा, वह जादूगर ही था, जबान का जादूगर–जहाँ बैठ जाए वहाँ चुटकुले, चुटकियाँ और मजाक, छेड़छाड़ यानी महफिल जिंदा हो उठती थी और जब लिखता तो वहीं जबान जैसे शब्दों के फूल–बेल बनाकर कागज पर चलने लगती, बेहद खूबसूरत हैंड राइटिंग ...कभी लगता कि इस हैंड–राइटिंग में कोई भी बड़ी चीज कैसे लिखी जा सकती है? कभी शंका होती कि कहीं यह भीतर की किसी कमी को ढकने का आकर्षक पर्दा तो नहीं हैं? वह प्रतिभावान भी था और ब्रिलियेंट भी। वह हिन्दी के कुछ गिने–चुने पब्लिक इंटलैक्चुअलों में एक था।''[69]

उनके आदम्य साहस और शक्ति पर यादव ने आगे लिखा कि– ''अद्भुत जीवट वाला व्यक्ति था कमलेश्वर ...जब इसकी रीढ़ के दर्द ने लगभग बिस्तर–बंद कर दिया था और बाद में दिल की समस्या को लेकर एस्कोर्ट में रहना पड़ा था। तब भी न उसकी मजाक मिजाजी में अंतर आया, न लेखन के सिलसिले में।''[70]

- **ममता कालिया** : (उपन्यासकार, कहानीकार) विद्यार्थी जीवन से कमलेश्वर के संपर्क में रही, कहती हैं कि – ''कमलेश्वर जी संप्रेषण की दुनिया के आदमी थे। वे कभी किसी से पूरा संवाद बंद नहीं करते थे। एक–न–एक चैनल हमेशा खुला रहता।''[71]
- **दामोदर सरन** : प्रसिद्ध साहित्यकार) ''कमलेश्वर एक शक्तिपुंज हैं–वह बोलता हैं, और बेहद अच्छा बोलता है। इतना अच्छा कि उसके बोलने और बात करने के संप्रेषित हो जाने में कोई फासला बच नहीं पाता। यदि उसके सारे भाषणों को टेप कर लिया जाए तो बिना एडीटिंग के अच्छा बढ़िया वाड्.मय तैयार हो जाए।[72]

कृतित्व

किसी भी रचनाकार की सामर्थ्य और रचनात्मकता का आकलन उसकी श्रेष्ठ कृतियों के आधार पर ही किया जाता है। आधुनिक हिंदी कथा साहित्य में कमलेश्वर का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। जीवन की विसंगतियों के बीच तालमेल कायम करने वाले कमलेश्वर की कथा–कृतियों में मध्य–वर्ग का यथार्थ स्पष्ट रूप से उभरा है। सत्य तो यह है कि कमलेश्वर अपनी कथाओं में युग–सत्य को उद्घाटित करने में पर्याप्त सफल रहे हैं। उनके उपन्यासों और कहानियों में बड़ी सूक्ष्मता और सांकेतिकता के साथ नए सामाजिक यथार्थ को निरूपित किया गया है।

मैनपुरी कस्बे से जुड़े हुए कमलेश्वर ने अपनी प्रारम्भिक कहानियाँ और उपन्यास एक निश्चित वर्ग को केन्द्र मानकर लिखे हैं। ''कस्बाई निम्न–मध्यमवर्ग के वर्ग–वैषम्य, शोषण और सामाजिक असमानता का चित्रण लेखक ने अपनी प्रगतिशील विचारधारा के आधार पर किया है। लेकिन यह प्रगतिशीलता यशपाल या नागार्जुन जैसी राजनीतिक सिद्धांत प्रधान नहीं है। जीवन के संघर्षो से उत्पन्न उनकी यह विचारधारा हर मध्यमवर्गीय बुद्धिजीवी की है।''[73]

कमलेश्वर के साहित्य का विहंगम अवलोकन करना यहाँ अपरिहार्य है। क्योंकि इस पर हमारा एक अलग से अध्याय ही है। इसका संक्षिप्त वर्णन दिया जा रहा है। विस्तार इसलिए नहीं, क्योंकि इन सभी विधाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन आगे के अध्यायों में होगा। कमलेश्वर ने मूलतः कथा साहित्य की जिन विधाओं के लेखन के लिए अपनी लेखनी की नोंक को रखा वह उनका स्पर्ष पाकर जीवंत हो गई। यह अतिशयोक्ति नहीं बल्कि युग सत्य हैं। साहित्यकार कमलेश्वर का कथा साहित्य निम्नवत् रूप में प्रस्तुत है–

कहानी साहित्य

हिंदी की 'नई कहानी' के कृत्तिकारों में कमलेश्वर अपनी विशिष्ट पहचान रखते हैं। इनको प्रेमचंद की तरह पैदाइषी कहानीकार कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। एक सच्चे और ईमानदार रचनाकार की भाँति कमलेश्वर हमेशा इतिहास की प्रगतिशील विचारधारा के साथ अपने को संशोधित परिवर्तित कर गलत पड़ते जा रहे अंशों को त्यागते और नकारते हुए, सच्चाई को लगातार स्वीकार करते रहे हैं।

कहानी साहित्य का विस्तृत एवं सिलसिलेवार अध्ययन हमने अलग से एक अध्याय में किया है। कमलेश्वर के कहानी संग्रह–'राजा निरबंसिया', 'कस्बे का आदमी', 'खोई हुई दिशाएँ', 'मांस का दरिया', 'बयान', 'जॉर्ज पंचम की नाक', 'मेरी प्रिय कहानियाँ', 'कमलेश्वर की श्रेष्ठ कहानियाँ', 'इतने अच्छे दिन', 'कथा प्रस्थान' 'कोहरा' आदि शीर्षकों से चर्चित हैं। यहाँ इतना वर्णन पर्याप्त है।

कमलेश्वर की पहली कहानी 'फरार' है। जो कानपुर (1945 के आसपास) से निकलने वाली साप्ताहिक पत्रिका 'जयभारत' में प्रकाशित हुई थी। 'कामरेड' सन् 1948 के आस–पास एटा से निकलने वाली 'अप्सरा' पत्रिका में प्रकाशित हुई है, जो अब तक उनकी पहली कहानी मानी जाती रही है।

उपन्यास साहित्य

कमलेश्वर की कहानियों में जीवन के विविध रूपों की झाँकी मिलती है। कहानियों के साथ–साथ उन्होंने उपन्यास भी लिखे हैं, जिनको लघु–उपन्यास की श्रेणी में रखा गया है। लघु होने पर भी इन उपन्यासों में बड़ी कुशलता और सांकेतिकता के साथ सामाजिक यथार्थ को निरूपित किया गया है।

कमलेश्वर के अब तक कुल 12 उपन्यास प्रकाशित हुए हैं, जिनकी सूची इस प्रकार हैं–'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' कमलेश्वर

का प्रथम उपन्यास है जो सन् 1958–59 में लिखा गया था और बाद में प्रकाषक की भूल के कारण 1968 में 'बदनाम गली' शीर्षक से भी प्रकाशित हुआ था। इसके बाद 'डाक बंगला (1962), 'लौटे हुए मुसाफिर (1963', 'तीसरा आदमी (1964)', 'समुद्र में खोया हुआ आदमी (1965)' लिखे गए। ये उपन्यास कमलेश्वर के दूसरे दौर के उपन्यास हैं, जो उन्होंने दिल्ली में रहते हुए लिखे। इसके बाद इन्होंने 'काली आँधी' लिखा जो धारावाहिक के रूप में 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' पत्रिका में दिसम्बर, 1974 से प्रकाशित होना प्रारम्भ हुआ था। इसके बाद उन्होंने सन् 1976 में 'आगामी अतीत' लिखा। उसके बाद 'वही बात (1980)' में छपा तथा फिर 'सुबह–दोपहर–शाम' का प्रकाषन सन् 1982 में हुआ। तत्पष्चात् 'रेगिस्तान (1985)' में प्रकाशित हुआ। लघु–उपन्यासों की श्रृंखला 'रेगिस्तान' उपन्यास पर आकर समाप्त होती है। अब कमलेश्वर ने अपने नाम के आगे लघु–उपन्यासकार का शीर्षक 'कितने पाकिस्तान' (सन् 2000 दीर्घ–उपन्यास लिखकर हटवा दिया। 'अनबीता व्यतीत' (अक्टूबर 2004 कादंबिनी में प्रकाशित) पर्यावरण और मानव–सम्बन्धों को रेखांकित करता है।

यहाँ इस अध्याय में कमलेश्वर के एक–एक उपन्यास को लेकर उसके वस्तु–पक्ष और शिल्प–पक्ष पर विचार करना समीचीन नहीं होगा, क्योंकि इसके लिए हमने एक अलग स्वतंत्र अध्याय का निर्माण किया है। वहाँ कमलेश्वर के सभी उपन्यासों का परिचय विस्तार से दिया गया है। यहाँ बस इतना ही पर्याप्त है।

नाट्य साहित्य

नाटक की दृष्टि से कमलेश्वर को अधिक सफलता नहीं मिल सकी, यही कारण है कि उनके नाटक अधिक प्रसिद्ध नहीं हो सके। यूँ भी कमलेश्वर एक कहानीकार तथा उपन्यासकार ही अधिक है। वैसे इस विधा को छुआ कमलेश्वर ने अवष्य है और परिणामस्वरूप, 'अधूरी आवाज', कमलेश्वर के बाल–नाटक, 'हिंदोस्तां हमारा' मौलिक

एवं 'खड़ियों का घेरा' और 'चारूलता' अनुदित नाटक लिखे हैं। मोकन राकेश का अधूरा नाटक 'पैर तले की जमीन' का दूसरा अंक भी कमलेश्वर ने सफलतापूर्वक पूरा किया है। गोदान, गबन, निर्मला के नाट्य रूपांतर तथा 'दर्पण' संग्रह में विभिन्न भारतीय भाषाओं की कहानियों के नाट्य रूपांतरण है। नाट्य साहित्य का विस्तृत वर्णन एक अतिरिक्त अध्याय में देखा जा सकता है।

यात्रा वृतांत

कमलेश्वर ने 3 संग्रहों में यात्रा–संस्मरण लिखे–'कश्मीर : रात के बाद', 'बंगलादेश की डायरी', 'चुनावों के दौरान' (प्रकाश्य) है। 'कश्मीर :रात के बाद' ने कमलेश्वर के जीवन को एक नया मोड़ दिया है। लेखक ने कश्मीर को बिलकुल एक नई दृष्टि से देखा हैं, जो इससे भिन्न है जो कश्मीर की सुन्दरता के साथ वहाँ की निर्धनता को अपनी ऐयाशी का शिकार बनाकर अन्य लेखक प्रस्तुत करते आए हैं इन यात्राओं में इन्हें अपने अभिन्न मित्र और साहित्यिक सहयात्री मोहन–राकेश से पहली मुलाकात हुई, इन यात्राओं के दौरान कश्मीर की मनोरम किंतु गरीब वादी में कमलेश्वर की मानवीय संवेदना को एक नया आयाम मिला। इसी यात्रा के संदर्भ में कमलेश्वर ने मौत की दस्तक को चूनौती दी। इसलिए 'कश्मीर' : रात के बाद' कमलेश्वर की आस्था, विश्वास और वैचारिक धरातल की धरोहर का दस्तावेज है। जिससे कथाकार कमलेश्वर के अतिरिक्त व्यक्ति कमलेश्वर की जिंदगी की पूरी आस्था प्रतिध्वनित होती दिखाई देती है। अतिरिक्त वर्णन इत्तर सृजन अध्याय में है।

आत्मकथात्मक संस्मरण

कमलेश्वर ने अपने साहित्यिक एंव फिल्मी यात्रा से संबंधित तीन खण्ड़ों में आत्मकथात्मक संस्मरण लिखें। ये हैं – जो मैंने जिया, यादों के चिराग तथा जलती हुई नदी। सर्वप्रथम ये संस्मरण

कन्हैयालाल नंदन की सलाह एवं निवेदन पर 'रूडेमिल' पत्र में छपने लगे थे। बाद में ये संस्मरणात्मक आत्मकथ्य पुस्तकाकार रूप में हमारे सामने हैं।

तीन खण्ड़ों में पहला खंड 'जो मैंने लिया' मैं अपने बचपन के दिनों से यानि मैनपुरी से इलाहाबाद और फिर दिल्ली तक का सफर तय किया है। इलाहाबाद की रंगत एवं वहां के साहित्यिक वातावरण का बेहद रेखाचित्रात्मक वर्णन इसी खंड की अमूल्य निधि है। नयी कहानी आंदोलन तथा अपनी मित्र मंडली जिसमें मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव तथा दुष्यंत कुमार के साथ बेहद अविस्मरणीय पलों पढ़कर लगता है कमलेश्वर के जीवन के साथ हम भी बहते चलते हैं।

दूसरा खंड जिसका शीर्षक है 'यादों के चिराग' में नयी कहानी आंदोलन के साथ–साथ टेलीविजन की यात्रा, फिल्मी दुनिया की हकीकत का रेखाचित्र शैली में वर्णन प्रस्तुत है। तीसरा खंड जिसका शीर्षक है–जलती हुई नदी की कथा एक रहस्मयी स्त्री से से बंधी आरंभ से अंत तक चलती है। उसी के साथ वे व्यक्तियों और घटनाओं को अपनी विशिष्ट ईमानदारी और बेबाकी साथ साहित्य, कला और फिल्म की कहानी कहते चलते हैं। 'जलती हुई नदी' में उन्होंने फिल्मी सतरंगी दुनिया की सच्चाई का कच्चा चिट्‌ठा खोलकर रखा है। नगरीय तथा महानगरीय जीवन शैली तथा भाग–दौड़ भरी आधुनिक जीवन शैली का वर्णन है। आधुनिकता की अंधी दौड़ में युवक युवतियों की फिसलन को बखूबी देखा जा सकता है।

इस प्रकार कमलेश्वर के कृतित्व का यह पक्ष भी बहुत मजबूत और परिपक्व दिखायी देता है। अपने समय, समाज तथा लोगों के साथ बिताये पलों का कदम दर कदम वर्णन इसकी गौरव निधि है।

सम्पादकीय

साहित्य को अपना जीवन और पत्रकारिता को अपना मिषन मानने वाले कमलेश्वर ने हिंदी पत्रकारिता जिसमें–दैनिक, साप्ताहिक,

पाक्षिक, मासिक आदि पत्रों का कुशल संपादन किया है। अपनी मृत्युपर्यंत स्तंभ लेख लिखते रहे। आधुनिक काल की इस नवीन विधा में कमलेश्वर ने सफलता अर्जित की है।

सामाजिक संदर्भ में पत्रकार की भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण होती है। वह समय–समय पर घटित घटनाओं की सूचना देकर उन्हें सही परिप्रेक्ष्य प्रदान करते हैं । प्रारम्भ से ही कमलेश्वर कथाकार के रूप में ही अधिक प्रख्यात हुए।

यद्यपि समय–समय पर उन्होंने सम्पादन कार्य भी किया है। किंतु उनके सम्पादन–व्यक्तित्व का पूर्ण विकास 'सारिका' पत्रिका के माध्यम से ही हुआ है।

सर्वप्रथम हिंदी पत्रिका 'संकेत' में उन्होंने सम्पादक के रूप में कार्य किया था। दिल्ली से निकलने वाले साप्ताहिक पत्र 'इंगित' का सम्पादन भी कमलेश्वर ने किया। कमलेश्वर ने कई उपनामों से विभिन्न विषयों पर सार्थक टिप्पणियाँ और निबंध लिखे हैं। 'इंगित' साप्ताहिक की जानकारी बहुतों को नहीं है। पर यह पत्र ऐसा था जो समाचारों को विचारों की पीठिका के साथ प्रस्तुत करता था। यह कहने में कोई अतिशयोक्ति न होगी कि कमलेश्वर इस पत्र की पचास प्रतिशत सामग्री लिखते थे, अनुवाद करते थे। 'पर्यवेक्षक' के उपनाम से कमलेश्वर इस पत्र में 'तीसरी दुनिया' के देशों की आर्थिक संयोजना पर टिप्पणियाँ लिखते रहे हैं। फासिस्ट विरोधी लेख 'संजय' के उपनाम से इसके अन्तर्गत उन्हीं के लिखे हुए हैं। सम्प्रदायवाद, अन्तर्राष्ट्रीयतावाद और हिन्दूवाद की बखिया कमलेश्वर ही 'हरिषचन्द्र' के उपनाम से उधेड़ते रहे हैं। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था, युद्धोन्माद और भारतीय बुर्जुआ वर्ग की साजिषों को कमलेश्वर ही 'सौमित्र सिन्हा' के नाम से बेनकाब करते रहे हैं। प्रतिक्रियावादी, सेक्सवादी, स्वच्छंतावादी प्रवृतियों के विद्रोही बनकर कमलेश्वर ने 'विप्र गोस्वामी' बनकर लेख लिखे हैं।''[74]

इससे पहले कमलेश्वर ने 'नई कहानियाँ' का सम्पादन संभाला था। इस काल में उन्होंने प्रगतिशील रचनात्मकता को रेखांकित करते हुए कुछ नए कथाकारों को छापा था जो आज हिंदी साहित्य में चर्चित नाम हैं। कमलेश्वर ने कभी भी आगे आने वाले लेखकों को नहीं रोका, बल्कि उनकी रचनात्मकता को रेखांकित किया। यहाँ पर यह जान लेना भी आवश्यक नहीं होगा कि जब सन् 1954 में इलाहाबाद से 'कहानी' पत्रिका का प्रकाशन शुरू हुआ था तो उसके पहले अंक से ही 'कमलेश्वर' कहानी पत्रिका के सहयोगी सम्पादक के रूप में कार्य करते रहे थे और समजावादी देशों की कहानियों के अनुवाद विशेषतः करते रहे थे। यानि कमलेश्वर का बपतिस्मा ही प्रेमचन्द की परम्परा से हुआ था।''[75]

'नई कहानियाँ' साहित्यिक पत्रिका थी। जिसके माध्यम से कमलेश्वर को साहित्यिक समस्याओं को उजागर करने का अवसर प्राप्त हुआ। 'मेरा हमदम मेरा दोस्त' जैसे कालम में सीापित लेखकों के जीवन के अंतरंग संदर्भो को पाठकों के सामने रखा। नए लेखकों की वैचारिक समस्याओं को मुखर किया। यहीं से उनके साहित्यिक सम्पादक का व्यक्तित्व उभरकर सामने आने लगता है। इस संदर्भ में 'नई धारा' के 'समकालीन कहानी विशेषांक' की चर्चा भी आवश्यक है क्योंकि इसे उन्होंने विशेष रूप से सम्पादित किया था। कहानियों के अतिरिक्त बहुत से लेखकों ने 'आधुनिक संक्रमण और लेखन दृष्टि' कहानी परिचर्चा के अन्तर्गत अपने–अपने विचार प्रकट किए।

कमलेश्वर ने सुप्रसिद्ध मासिक पत्रिका 'सारिका' का सम्पादन भी किया है। इस पत्रिका में 'मेरा पन्ना' नामक कालम में कमलेश्वर ने 'आम आदमी' को उसकी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों के बीच उजागर किया है। 'सारिका' के कई अन्तर्राष्ट्रीय अंक निकालकर कमलेश्वर ने हिंदी कथा साहित्य को अन्तर्राष्ट्रीय कथाक्रम से परिचित करवाया है। उनके विशेष अंक 'युगोस्लावियन कहानी अंक', 'अफ्रीकी कहानी अंक', 'तीसरी दुनिया', 'सामान्य जन'

और 'सहयात्री' लेखक अंक प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त 'गर्दिष के दिन', 'आद्य कथाकार', 'प्रगतिशील कहानियाँ', 'नई धारा', 'समांतर' का सम्पादन भी किया।

आलोचना

दिल्ली आने पर (सन् 1959–60) में कमलेश्वर ने 'नई कहानी की भूमिका' पर एक आलोचक के रूप में लिखी। जिसमें उन्होंने कहानी के स्वरूप का विश्लेषण किया। इसके चार वर्ष बाद उन्होंने 'धर्मयुग' पत्रिका में अपनी बहुचर्चित लेखमाला 'ऐयाश प्रेतों का विद्रोह' नामक आलोचनात्मक लेख लिखा। 'नई कहानी' के बाद पुस्तक में भी कमलेश्वर ने अपनी आलोचना दृष्टि को मुखरित किया है। 'सारिका' पत्रिका के सम्पादकत्व में इन्होंने इस पत्रिका में अनेकानेक आलोचनात्मक निबंध समयानुसार लिखे हैं। इसी पत्रिका का 'मेरा पन्ना' शीर्षक सम्पादकीय लेख आज के साहित्यकारों के लिए महत्वपूर्ण रहे हैं। इन्होंने 'मेरा पन्ना', 'समानान्तर सोच' नामक शीर्षक में नई कहानी के संदर्भ में महत्वपूर्ण आलोचनाएँ दी हैं।

'मेरा पन्ना' के लेखक के विरूद्ध पोस्टर और हैंड बिल निकाले गए, जान से मारने की धमकियाँ दी गई और घातक हमला भी किया। लेकिन कमलेश्वर अडिग रहा। अन्ततः कमलेश्वर को नौकरी से भी हटा दिया गया। इसलिए 'मेरा पन्ना' एक शिलालेख है कमलेश्वर की जीत का, आम–आदमी और उसके सतत संघर्ष की जीत का।.... मेरा पन्ना शिलालेख है व्यवसथा से एक बुद्धिजीवी के संघर्ष का। 'मेरा पन्ना' शिलालेख है लेखक और सत्ता की विजय का और पूँजीवादी प्रतिष्ठान की पराजय का।''[76]

उपर्युक्त टिप्पणी किसी अनाम लेखक की है जो कमलेश्वर की आलाचनात्मक गुणवत्ता की साक्षी है।

दूरदर्शन कार्य

कमलेश्वर के व्यक्तित्व का एक महत्वपूर्ण पहलू दूरदर्शन के माध्यम से मुखर होता है। कमलेश्वर केवल एक कथाकार ही नहीं वे एक बहुत उच्च कोटि के दूरदर्शन कलाकार भी थे। कमलेश्वर टी.वी. पर 'परिक्रमा' कार्य{म देते थे। इस कार्यक्रम में दस रुपए प्रति व्यक्ति हजामत बनाने वाले ओबेराय शेरेटन के नाई से लेकर रेलवे–स्टेषन पर चवन्नी में बाल काटने वाले नाई/मकान बनाने वाले/मजदूर /विक्टोरिया चलाने वाले/खाने के डिब्बे सिर पर उठाकर पहुँचाने वाले/झोंपड़ पट्टी में रहने वाले/टैक्सी वाले/कचरा जमा करने वाले/गटर में उतरने वाले/सड़कों पर गाने वाले–इन सब लोगों के इण्टरव्यू लिए जाते थे। ये सब तथ्य इस बात के प्रमाण हैं कि यह कार्यक्रम निम्न–मध्यम वर्ग के लोगों के निकट था।

टेलीविजन जैसे सशक्त माध्यम को उन्होंने भारतीय साहित्य और रंगमंच से जोड़ने का प्रयास किया था। यह प्रयास उनका तब से चल रहा था, जब वे भारतीय दूरदर्शन के प्रथम स्क्रिप्ट राइटर, 1959 के रूप में दूरदर्शन में पहुँचे और उनकी यह कोशिष तब भी जारी रही जब वे बीस वर्ष बाद भारतीय दूरदर्शन के एडिशनल डायरेक्टर जनरल (सन् 1980–82) बनकर दूरदर्शन में पुनः पहुँचे। इस स्थिति में उन्होंने जो कार्य किए वे सर्वविदित हैं।

कमलेश्वर ने दूरदर्शन के प्रायोजित कार्यक्रमों के लिए पहला साहित्यिक सीरीयल प्रस्तुत किया 'दर्पण'। अलग–अलग भारतीय भाषाओं से चुनी गई कहानियों को पटकथा और संवाद द्वारा हिंदी के माध्यम से प्रस्तुत करके एक चुनौतिपूर्ण कार्य किया। परन्तु दर्शकों में सींपित 'दर्पण' की लोकप्रियता और ख्याति ने यह स्पष्ट कर दिया कि भारतीय भाषाओं की सांस्कृतिक–साहित्यिक धरोहर को हिंदी के माध्यम से प्रस्तुत किया जा सकता है–हिंदी ही देश की अपनी राष्ट्रीय भूमिका अदा कर सकती है। 'परिक्रमा' के अतिरिक्त कमलेश्वर ने

दूरदर्शन से 'लोकमंच' तथा 'दूरदर्शन–क्लब' जैसे रोचक एवं मनोरंजक कार्यक्रम भी प्रस्तुत किए।

कमलेश्वर ने दूरदर्शन के साथ–साथ हिंदी फिल्मों के लिए भी कभी न भूलने वाली कहानियाँ दी हैं। यथा–आँधी, मौसम, बदनाम बस्ती, फिर भी, अमानुष, पति–पत्नी और वह, आनन्द आश्रम, अम्मा, वही बात, मृग तृष्णा जैसी अविस्मरणीय फिल्मों की कथा, पटकथा तथा संवाद भी लिखे हैं। इस मार्ग पर कमलेश्वर की सुघड़ कलम अंत तक चलती रही।

कमलेश्वर के दूरदर्शन कार्यक्रमों के संदर्भ में अनेक विद्वानों ने अपनी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त की हैं, यथा–प्रसिद्ध अंग्रेजी कवि और विचारक निसीम इजीकेल– 'कमलेश्वर के कार्यक्रम भारतीय टेलीविजन की उपलब्धि है। वे कार्यक्रम ही नहीं घटनाएँ भी हैं।''[77]

सुप्रसिद्ध फिल्मकार ख्वाजा अब्बास कहते हैं कि–एक टेलीविजन स्टार हमारे कमलेश्वर साहब हैं। जो अपने प्रोग्राम के जरिए हमें अपने जैसे दूसरे लोगों से परिचित कराते हैं और इन इंसानों के जरिए हमारे समाज के दुखते हुए हिस्सों पर हाथ रखकर दिखाते हैं।''[78]

प्रसिद्ध सिने अभिनेता 'आई.एस.जौहर' ने एक जगह लिखा–''जो लोग चार हजार रुपए खर्च करके टी.वी. खरीदते हैं, वे हज्जामों और कुलियों के कार्यक्रम नहीं देखना चाहते। कमलेश्वर के प्रोग्राम बकवास हैं।''[79]

कमलेश्वर ने इसका टी.वी. पर ही उत्तर दिया–''जो लोग अपनी आँखों पर चार हजार का चष्मा लगाए बैठे हैं, उन्हें जो दिखाई नहीं देता, वहीं मैं अपनै कार्य{मों में पेष करता हूँ।'' और इस प्रकार कमलेश्वर एक विख्यात टी.वी. स्टान बन गए। उनकी इस अद्वितीय प्रतिभा के कारण ही बम्बई की पत्रिका 'डेबोनेयर' ने उन्हें सन् 1975 के सर्वश्रेष्ठ टी.वी. व्यक्तित्व के रूप में चुना था।''[80]

सृजन की भूमिका, लेखन के प्रति जुनून

प्रत्येक रचनाकार बनने के पीछे कुछ ऐसी परिस्थितियाँ मजबूरियाँ और समकालीन समाज में कुछ ऐसी विद्रुपताएँ होती है जिसे लेखक व्यक्ति सहन नहीं कर पाता। उसके साहित्य या सृजन की भूमिका वहीं से बन जाती है। कमलेश्वर कहते हैं कि–''साहित्य चमत्कार नहीं हैं...साहित्य किसी भी लेखक की रचनात्मक पीड़ा और उसके दौर की मिली–जुली यातना का दस्तावेज है।''[81] विज्ञान का विद्यार्थी होते हुए भी साहित्य में आकर लेखन करना वे अपना व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं बल्कि मजबूरी मानते हैं–''लेखन मेरा कोई व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं था। पर अपने चारों ओर फेले हुए दुःख और दैन्य भीषण मजबूरियाँ और उदास चेहरे नहीं देख पाया, मुझे हमेशा ऐसा लगता रहा कि मेरे चारों ओर जो लोग हैं जिनके साथ में उठता, बैठता, खेलता और हँसता हूँ –ये एक झूठी जिंदगी जी रहे हैं, उनकी हँसी खोखली हैं, उनके चेहरे की चमक बनावटी है और इनके दिलों में अभाव और दर्द का सागर पछाड़ें खा रहा है।''[82] साहित्य का रास्ता कोई अचानक नहीं बना बल्कि सोच–समझकर और सार्थकता इसी में लगी तब चुना। ''यह रास्ता मैंने किसी मजबूरी में नहीं, खूब सोच समझकर चुना है, क्योंकि मुझे अपने जीवन की सार्थकता इसी में दिखाई पड़ती। यदि मैं नौकरी ही करना चाहता तो कर सकता था और आठ–दस बच्चों का बाप बनकर मर जाता, पर मेरी आत्मा में शुरू से ही न जाने कैसा विद्रोह पल रहा था कि अपने को न रोक पाया.... उस विद्रोह ने लिखने की शक्ल ले ली।''[83] जब किसी के जीवन में भयंकर तूफान अर्थात्, तंगी, गरीबी, आर्थिक मजबूरियाँ, पारिवारिक कष्ट, सरकारी भेदभाव, अपरिवर्तनीय सामाजिक गतिविधियाँ सामने आती है तो लेखन ही उसका सहारा बनता है। चाहे वे महाप्राण निराला हो, महादेवी वर्मा हो या मीरा हो। यही रास्ता उन्हें मानव बने रहने देता है। ''अगर मुझे साहित्य का रास्ता न

मिलता तो शायद में आत्महत्या करता या किसी की भी हत्या करके फाँसी पर चढ़ जाता।''[84]

इस प्रकार से कमलेश्वर जन्मजात लेखक नहीं था। उसके समय, समाज और पारिवारिक परिस्थितियों ने उसे लिखने की ओर प्रेरित किया। यही सब परिस्थितियाँ उनके साहित्य की आधारभूमि बनी है।

लेखन के प्रति जुनून

शैलेष मटियानी ने लिखा है—कमलेश्वर ने जमकर लिखा और लोगों से जमकर अपनी हस्ती को मनवाया। चाहे कहानी हो, चाहे उपन्यास, चाहे संपादन लगभग सभी विधाओं में अपनी दखल रखते थे। साहित्य की प्रत्येक विधा का विवेचन करते समय कमलेश्वर से किनारा करके निकल नहीं सकते।

कमलेश्वर ने अपने लेखन का प्रारंभ 13 वर्ष की उम्र में किया। उनकी पहली कहानी 1945 के आसपास 'फरार' नाम से कानुपर से निकलने वाली साप्ताहिक साहित्यिक पत्रिका 'जयभारत' में प्रकाशित हुई थी। इसी समय उनका संपर्क क्रांतिकारी समाजवादी पार्टी से हुआ। पार्टी का एक समाचार—पत्र निकलता था—'क्रांति युग' जिसमें अनेक रचनाएँ भेजी और प्रकाशित हुई। इसी पत्र में वे क्रांतिकारियों की छोटी—छोटी जीवनियाँ भी लिखा करते थ। सन् 1952 में कमलेश्वर ने एम. ए. हिन्दी में दाखिला क्या लिया वे तो पूर्णतया हिन्दी के ही बनकर रह गये। ''मैं शुरू से विज्ञान का विद्यार्थी था पर हिन्दी ने मुझे पहचान दी। यह पहचान विज्ञान नहीं दे पाता था।[85] उसी समय गंगा प्रसाद और शीतला सहाय श्रीवास्तव के संपर्क में लेखक आया। यह साहित्यकारों से उनका प्रथम परिचय हुआ था।

कमलेश्वर का लेखन के प्रति इतना अधिक जुनून था कि उसने इसकी सभी हदें पार कर दी। उनका लेखन के प्रति विचार कैसे और कब पुख्ता बन गया, जिसे जीवनपर्यन्त पूर्ण निष्ठा से

किया। उनके परममित्र दुष्यंतकुमार ने लिखा है–''वे दिन भी मुझे याद हैं जब वह पाजामा–कुरता पहने हुए अपनी उसी छकड़ा साइकिल पर एक शाम मेरे पास आया था। उसकी आँखों में धूल उड़ रही थी और चेहरा एकदम उतरा हुआ था। चाय पीते हुए उसने बहुत धीरे से कहा, 'अब मैं अकेला रह गया हूँ, और मुझे मालूम है कि अपने लिखने की आड़ पर उसने अपनी जिंदगी की वह चीज खुद खो दी थी जिसे वह उस वक्त सबसे ज्यादा चाहता था। उसका एक ही तर्क था–''दुष्यंत, जिंदगी में सब हासिल नहीं होता। चुनना तो होगा ही कि मैं क्या चाहता हूँ.... और उसने अपने लिए साहित्य का रास्ता चुन लिया था।''[86]

कमलेश्वर ने अपना लेखन का सफर कहानी से शुरू किया। उन दिनों कहानी के लिए पारिश्रमिक अधिक नहीं मिलता था। मात्र बीस या पच्चीस रुपये हुआ करता था। परंतु फिर भी। जब कहानी लिखते तो एक ही सीटिंग में पूरी करते, नहीं तो वह हमेशा के लिए छूट जाती थी। बहुत दिनों तक इधर–उधर भागता परंतु कहानी लिखने में नहीं आती। कहानी लेखन की पृष्ठीाूमि पर स्वयं कमलेश्वर लिखते हैं–''मेरे लिए कहानी का पहला वाक्य या पैराग्राफ लिखना सबसे कठिन काम होता है। इससे मैं जी चुराता हूँ। कई–कई दिनों मैं कहानी से भागता रहता हूँ। गैर जरूरी कामों को जरूरी बना लेता हूँ। ज्यादा सिगरेट पीकर खुद को बताता हूँ कि सिर भारी हो गया है, या कच्चा नाखून कट जाने को न लिखने का बहाना बना लेता हूँ। मेरी दुनियादारी उस समय चरम पर होती हैं, जब मैं कहानी लिखने से भाग रहा होता हूँ ....शायद मेरी प्रगाढ़ दोस्तियों का यही रहस्या है। मेरे अंदर जब कोई कथ्य अकुलाता है तो उससे पीछा छुड़ाने के लिए मैं एकाएक अपनी जिम्मेदारियों को प्राथमिकता देने लगता हूँ .... मैं उसी वक्त किसी जरूरी सांसारिक काम में व्यस्त होता हूँ जब भीतर कुछ बुरी तरह से घुमड़ रहा होता है। मैं कहानी के अँधेरों और यथार्थ के यातनाप्रद क्षणों को तोड़ने या उनसे कतराने के लिए तब

रोजमर्रा के कामों में ज्यादा लिप्त हो जाता हूँ। इससे मुझे उजाला मिलता है। शायद यह भागना और लेखन से कतराना भी नहीं, यह शायद कहानी लिखने से पहले खुद संयत करने का एक तरीका ही हो।''[87]

लेखन का जुनून इस कदर था कि जहाँ बैठ गए लिखने लगे। अधिकतर साहित्यकार लिखने के लिए कतराते हैं। उसी परम्परा में कमलेश्वर के लिए लिखने के लिए एक हाथ और हो तो भी कम। बहुत कठिनाई हो तो भी लिखते रहना यह उसकी फितरत थी। लिखने के अपने संस्करण लेखक स्वयं सुनाता हैं–''मुझे बरसात के चिपचिपाते दिन अच्छी तरह याद है जब मैं सीढ़ियों के लैंडिंग पर बैठकर लिखा करता था, नंगे बदन पतंगे और कीड़ें काटते रहते थे ... ..जगह–जगह गर्दन और पीठ चिलचिलाती रहती थी, पर लिखने का नषा इतना गहरा होता था कि कभी–कभी तो सुबह तक लिखना जारी रहता था। लिखने से मैं कभी थकता नहीं था। एक कहानी के बाद दूसरी शुरू करने में मुझे वक्त नहीं लगता था। और फिर एक बैठक में उसे समाप्त करने की लेखकीय लाचारी थी ही।''[88]

लेखकीय जीवन बहुत कठिन होता है। यह भावनाओं से नहीं लड़ा जाता। जितना बाहरी रूप से जिना सरल लगता है। उतना ही अंदर से खुरदरा होता है। अपनी पत्नी गायत्री को एक पत्र में कहा कि यह अग्निपथ है–''मैं तो लिखने के लिए जिंदगी अर्पित कर चुका था ...... पता नहीं तुम्हें कैसा लगा होगा मेरे साथ ....। तुम्हें जिंदगी में मेरे साथ उसी तरह जलना होगा जैसे मैं जल रहा हूँ–कहीं इस आग में तुम घबरा न जाओ। यह अग्नि पथ है।''[89] कभी–कभी उबकर सोचते कि न जाने क्यों मैंने लेखक होकर अपने सिर पर कफन बाँध लिया है। जिस तरह से नदी में उतरा व्यक्ति महसूस करता है। वही एक लेखक की स्थिति होती है–''मुझे हमेशा लगता था कि लेखक की स्थिति बहुत नाजुक होती है। लेखक नदी में उतरा वह रचनाकार

होता है जो नदी की धारा के वेग को भी सहता है और पैरों तले यथार्थ की कटती रेत अपने अनुभव के पैर भी धंसाता जाता है।''[90]

एक फिल्मी पटकथा लेखक के रूप में कमलेश्वर जाना पहचाना नाम था लगभग सौ फिल्मों की पटकथा, संवाद लेखन का कार्य किया। कहानी, उपन्यास लेखन की तरह फिल्मों में जमकर कार्य किया। अब लिखने बैठते तो कुछ दिनों में फिल्म पटकथा तैयार हो जाती थी–''अपनी आदत और अभ्यास के कारण में आठ–दस दिनों में पूरी फिल्म लिख डालता था और निर्माता को थमा देता था।[91]

कमलेश्वर महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति भी रहे हैं। उनके इसी गुण ने उन्हें लेखन कार्य की ओर प्रवृत्त किया–''यद्यपि अपने लेखन के संबंध में वह डींगे भी हाँक देता है पर उसके पीछे आत्म पवंचना कम और अच्छा तथा नया लिखने की महत्त्वाकांक्ष अधिक होती है। यह भावना उसके लेखन को जीवित रखे है।''[92]

इस तरह कमलेश्वर ने जमकर लेखन किया जिसका प्रमाण उनकी 70 के लगभग मौलिक पुस्तकें, अनुवाद और समकालीन मुद्दों पर स्तंभ लेख। सब व्यस्ततओं के बावजूद लेखन में विराम नहीं आया। यह प्रक्रिया अंत काल तक बनी रही।

कमलेश्वर का लेखन : प्रेरणा स्त्रोत एवं चिंतन के धरातल

प्रत्येक साहित्यकार पर समकालीन साहित्यिक परिवेश का प्रभाव बराबर पड़ता है। किसी भी रचनाकार की कृतियों में वैचारिक या जीवन दर्षन संबंधी मान्यताएँ उसकी रचनाओं में स्पष्ट रूप से परिलक्षित हो जाती है। जिनसे वह प्रेरणा ग्रहण करता है। ''कमलेश्वर साहित्य के विद्यार्थी बिल्कुल नहीं थे वह विज्ञान का विद्यार्थी था। इंजीनियर परिवार का लड़का इलाहाबाद के सांस्कृतिक परिवेश में ऐसा रमा कि विज्ञान का विषय छोड़कर हिन्दी साहित्य में एम.ए. करने की ओर मुड़ गया।''[93] कमलेश्वर ने अपनी सर्जनात्मकता की दस प्रेरणा भूमि प्रयोग को लेकर कहा है–''मैंने विज्ञान के विषय त्याग दिए

और साहित्य ले लिया। इलाहाबाद सांस्कृतिक और रचनात्मक तौर पर तब सबसे जीवंत नगर था। कवियो लेखकों की प्रख्यात पीढ़ी सुमित्रानंद पंत, निराला, महादेवी, इलाचंद्र जोषी, बच्चन जी आदि सभी इलाहाबाद में ही थे और वातावरण के कारण शीघ्र ही मुझे साहित्य में दीक्षित होने का अवसर मिल गया।''[94] कमलेश्वर ने ऐसा ही एक अन्य शब्द चित्र इलाहाबाद का उतारा–''इलाहाबाद शब्दों का स्वर्ण महल है। इलाहाबाद की इमारतों के कारीगर उसके लेखक और कवि हैं। इलाहाबाद की गलियों में साहित्य साँस लेता है। और हर दिन हर शाम इलाहाबाद सोचता हुआ सोता है और गुनगुनाता हुआ जागता है। यह शहर एक महावृक्ष हैं, जिसकी शाखों की नसों में न जाने कितने रंग और वैचारिक धाराएँ बहती हैं। यह शब्दों की गंध और विचारों की सुगंध का शहर हैं।''[95]

लेखन कमलेश्वर के लिए मजबूरी नहीं था परंतु विषय का लेखन से संबंध नहीं होता इसे कमलेश्वर ने सिद्ध करके दिखाया। साहित्य का वरण किया तो था परंतु उसके पीछे कितना संघर्ष होगा। उस संघर्ष को आसान कैसे बनाया–''मैं जानता था कि मुझे कड़ा संघर्ष करना होगा, क्योंकि पिता थे नहीं और बड़े भाई मैनपुरी से बाहर जाकर काम कर रहे थे।'' मैं अकेला था। इस अकेलेपन को माँ ने तोड़ा अभिन्न साथी बनकर।''[96] माँ की प्रेरणा ने कमलेश्वर को प्रोत्साहित किया। जब बार–बार कमलेश्वर घर आते तो माँ उन्हें डटकर पढ़ने को प्रेरित किया। इसलिए उनके जीवन पर सर्वाधिक प्रभाव माँ का पड़ा। माँ के अतिरिक्त भाई और मित्रों से प्रेरणा प्राप्त की थी। साथ ही स्वयं उनका व्यक्तित्व भी उन्हें लेखन के प्रति रूचि उत्पन्न करता रहा।

माँ का प्रभाव

संसार में शायद ही कोई ऐसा बिरला होगा जो अपने जन्मदाता माता–पिता से प्रभावित हुए बिना रह सके। प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व

के निर्माण में उनके माता–पिता का विशेष हाथ रहता है। बचपन में वह अपने बच्चे को जिस साँचे में ढालते हैं, उसी साँचे में ढलकर उसके व्यक्तित्व का निर्माण होता है। यद्यपि कमलेश्वर पर उनके पिता का प्रभाव नहीं देखा जाता क्योंकि बाल्यकाल में ही पिता की मृत्यु हो गयी थी। तथापि उनकी माता का प्रभाव उन पर देखा जा सकता है।

अस्तित्वाद से प्रभावित

जहाँ तक अस्तित्वाद के प्रभाव ग्रहण का प्रश्न है, कमलेश्वर ने स्वीकार किया है–''पाश्चात्य प्रभाव को ग्रहण करना कोई बुरी बात नहीं है लेकिन उसे अपने परिवेश की सापेक्षता में ही ग्रहण किया जाना चाहिए। यदि ऐसा नहीं होता तो दृष्टि दूषित हो जाती है, क्योंकि तब लेखक न उस विदेषी चिंतन का प्रामाणिक व्याख्याता होता है और न अपने परिवेश बोध का प्रतिनिधि नयी कहानी के विकास क्रम में कुछ ऐसे लेखक व्यक्तित्व भी हैं जो न स्वयं अपने से जुड़े हैं और न पराये से।''[97]

इस तरह कमलेश्वर के साहित्यिक प्रेरणा स्त्रोत एवं चिंतन के धरातल पर विष्लेषित व्यक्तियों एंव दर्षनों का प्रभाव रहा। इनमें सर्वाधिक प्रभाव लेखक अपनी माँ एवं भाई सिद्धार्थ को मानते हैं। अपनी माँ की सम्पर्णशीलता और सामाजिकता से बहुत प्रभावित हुए। इसके साथ ही अपने समकालीन साहित्यिक मित्रों से भी प्रभावित रहे। इन सबके बावजूद वे नितांत भारतीय रहे। सबके पीछे अपनी भारतीयता एवं परिवेश को कभी नहीं भूल सके। यही उनके साहित्य की अतिरिक्त विशेषता ही है।

संदर्भ संकेत

1. (स) मधुकर सिंह–कमलेश्वर–आईने के सामने, पृ. 78
2. वही, पृ. 78
3. वहीं, पृ. 80
4. वही, पृ. 82
5. (सं.) मधुकर सिंह–कमलेश्वर : दुष्यंत कुमार की निगाह में, पृ. 87
6. कमलेश्वर : जो मैंने किया, पृ. 30
7. वही, पृ. 24
8. (सं.) मधुकर सिंह–कमलेश्वर :आईने के सामने, पृ. 82
9. वही, पृ. 82
10. कमलेश्वर–तुम्हारा कमलेश्वर पृ. 29
11. (सं.) मधुकर सिंह–कमलेश्वर : आईने के सामने, पृ. 81
12. कमलेश्वर : जो मैंने जिया, पृ. 21
13. कमलेश्वर : यादों के चिराग, पृ. 10
14. कमलेश्वर : तुम्हारा कमलेश्वर, पृ. 21
15. गायत्री–कमलेश्वर मेरे हम सफर, पृ. 126
16. जी डब्ल्यू अलपोर्ट : समाज मनोविज्ञान, पृ. 62
17. एन.एल.मन – साइक्लोजा, पृ. 569
18. (सं.) मधुकर सिंह – कमलेश्वर – दुष्यंत कुमार की निगाह में, पृ. 94
19. वहीं, पृ. 87
20. वहीं पृ. 95
21. कमलेश्वर – मेरा हमदम मेरा दोस्त, पृ. 14
22. (सं.) मधुकर सिंह–कमलेश्वर– दुष्यंत कुमार की निगाह में पृ. 78
23. ममता कालिया–कमलेश्वर जी (परिकथा, मार्च–अप्रैल 07) पृ. 11
24. वहीं, पृ. 12
25. (सं.) मधुकर सिंह–कमलेश्वर : आईने के सामने, पृ. 74

26. कमलेश्वर—जो मैंने किया, पृ. 104
27. कमलेश्वर—यादों के चिराग, पृ. 105
28. कमलेश्वर—जो मैंने जिया, पृ. 27
29. वहीं, पृ. 34
30. गायत्री—कमलेश्वर मेरे हमसफर, पृ. 20
31. कमलेश्वर—यादों के चिराग, पृ. 9
32. गायत्री—कमलेश्वर मेरे हमसफर , पृ. 56
33. राजेन्द्र यादव—कथादेश (अगस्त, 05) पृ. 15
34. वहीं, पृ. 15
35. कमलेश्वर—जो मैंने जिया, पृ. 17
36. गायत्री—कमलेश्वर मेरे हमसफर, पृ. 58
37. (सं.) मधुकर सिंह—कमलेश्वर :दुष्यंत कुमार की निगाह में, पृ. 89
38. राजेन्द्र यादव—हंस (मार्च 07) पृ. 4
39. (सं.) मधुकर सिंह—कमलेश्वर : दामोदर नरूरन की दृष्टि में, पृ. 88—89
40. (सं.) मधुकर सिंह—कमलेश्वर : आबिदसुरति की दृष्टि में, पृ. 362
41. कन्हैयालाल नंदन—आखिर वे कमलेश्वर थे(नवनीत मार्च, 07) पृ. 67
42. (सं.) मधुकर सिंह—कमलेश्वर :दुष्यंत कुमार की निगाह में, पृ. 90
43. वहीं, पृ. 91
44. वहीं, पृ.92
45. वहीं, पृ. 88
46. राजेन्द्र यादव— हंस (मार्च 2007) पृ. 2
47. ममता कालिया—कमलेश्वरजी (परिकथा मार्च—अप्रैल 07) पृ.11
48. (सं.) मधुकरसिंह—कमलेश्वर :आईने के सामने, पृ. 82
49. वहीं, पृ. 78
50. (सं)मधुकरसिंह—कमलेश्वर:दुष्यंत कुमार की निगाह में, पृ. 88
51. कमलेश्वर—तुम्हारा कमलेश्वर, पृ. 46
52. वहीं, पृ. 33

53. ममता कालिया–कमलेश्वर जी (मार्च–अप्रैल,07) पृ. 13
54. (सं.)मधुकरसिंह–कमलेश्वर–आईने के सामने, पृ. 82
55. (सं.)मधुकरसिंह–कमलेश्वरःदुष्यंत कुमार की निगाह में, पृ. 87
56. वहीं, पृ. 90
57. कमलेश्वर–तुम्हारा कमलेश्वर, पृ. 131
58. कमलेश्वर–जो मैंने किया, पृ. 79
59. कमलेश्वर–जलती हुई नदी, पृ. 14
60. कमलेश्वर–जो मैंने जिया, पृ. 144
61. वहीं, पृ. 185
62. कमलेश्वर, यादों के चिराग, पृ. 57–58
63. वहीं, पृ. 56–57
64. कमलेश्वर–तुम्हारा कमलेश्वर पृ. 25
65. गायत्री–कमलेश्वर मेरे हमसफर पृ. 9
66. कमलेश्वर–आउटलुक (जनवरी 07)
67. रवीन्द्र कालिया–संग्रथन (फरवरी 07) पृ. 3
68. गोपीचन्द नारंग–समकालीन साहित्य समाचार पृ. 5
69. राजेन्द्र यादव–हंस (मार्च 07) पृ. 3
70. वहीं, पृ. 5
71. ममता कालिया–कमलेश्वर जी (पारिकथा–मार्च, अप्रेल, 07)पृ. 12
72. (सं.) मधुकरसिंह–कमलेश्वर पृ. 287
73. डॉ. घनष्याम मधुप–हिंदी लघु उपन्यास, पृ. 160
74. (सं.) मधुकरसिंह–कमलेश्वर, पृ. 335
75. वहीं, पृ. 336
76. कमलेश्वर–मेरा पन्ना (फ्लैप से उद्धत)
77. (सं.) मधुकरसिंह–कमलेश्वर, पृ. 305
78. वहीं, पृ. 308
79. वहीं, पृ. 306
80. वहीं, पृ. 313

81. कमलेश्वर–यादों के चिराग, पृ.16
82. कमलेश्वर–तुम्हारा कमलेश्वर, पृ. 7
83. वहीं, पृ. 15
84. कमलेश्वर–जो मैंने किया, पृ. 43
85. वहीं, पृ. 43
86. (सं.) मधुकरसिंह–कमलेश्वर–दुष्यंत की निगाह में, पृ. 88
87. कमलेश्वर–यादों के चिराग, पृ. 59
88. कमलेश्वर–जो मैंने जिया, पृ. 199
89. कमलेश्वर–तुम्हारा कमलेश्वर, पृ. 14
90. कमलेश्वर–जो मैंने जिया, पृ. 114
91. कमलेश्वर–यादों के चिराग, पृ. 124
92. (सं.) मधुकरसिंह–कमलेश्वर दुष्यंत की निगाह में, पृ. 94
93. कृष्णदत्त पालीवाल–साहित्य अमृत (मार्च,07) पृ. 24
94. कमलेश्वर–जो मैंने जिया, पृ. 45
95. वही, पृ. 45
96. वही, पृ. 24
97. कमलेश्वर–जो मैंने किया, पृ. 179

कमलेश्वर के उपन्यास : परिचयात्मक अध्ययन

स्वातन्त्रयोत्तर हिंदी साहित्य को विकास और नई दिशा देने में कमलेश्वर का महत्वपूर्ण योगदान है। कमलेश्वर के उपन्यासों में आम हिन्दुस्तानी की जिंदगी दिखाई देती है। इसी कारण इनकी कृतियों में रोजी–रोटी, पति–पत्नी के कलह और प्रेम शंकाएँ, आस्थाएँ और निराषाएँ आदि सब–कुछ अपने यथार्थ रूप में ही आते हैं। कमलेश्वर की सबसे बड़ी विशेषता उनकी स्पष्टवादिता है। हर बात को अत्यंत स्पष्टता के साथ पाठकों के समक्ष रखने में वे काफी सफल हुए हैं। उनके उपन्यासों की एक प्रमुख विशिष्टता उनकी साफ–सुथरी भाषा का प्रवाह तथा यथार्थता है। चित्रात्मक भाषा सँजोने एवं वातावरण का यथार्थ निर्माण करने में वे पूर्ण सफल रहे हैं। आसपास के परिचित परिवेश के छोटे–छोटे ब्यौरे एवं बारीक रेषे भी उनकी सूक्ष्म अर्न्तदृष्टि से छूटने नहीं पाए हैं। सामाजिक दायित्व का निर्वाह एवं सोद्देष्यता उनके उपन्यासों की दूसरी विशेषता है।

कमलेश्वर सदैव अपने युग की किसी समस्या को सोचते रहते हैं। उनके उपन्यासों और कहानियों में उनका यही चिंतन प्रमुख रहता है। किंतु उनका चित्त दार्शनिकता के बोझ से बोझिल नहीं होता। उनका चिंतन एक बुद्धिजीवी चिंतन है जो जन–साधारण के लिए हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों में कुण्ठाग्रस्त परिस्थितियों, मनोवैज्ञानिक विश्लेशणों तथा यौन–विकृतियों का उलझाव उत्पन्न नहीं किया है। जीवन के यथार्थ को सहज प्रभावषाली ढंग से प्रस्तुत करने के कारण ही पाठक को अंत तक पहुँचकर कुछ सोचने पर मजबूर होना पड़ता है। इसीलिए युगबोध और युग–सत्य को कमलेश्वर ने सदैव प्राथमिकता दी है। राजेन्द्र यादव के मतानुसार–"कमलेश्वर अपना सच नहीं बोल सकता, मगर अपने युग और अपनी पीढ़ी का सच वह जरूर बोल सकता है। उसके पास जबान है और उसे बात करनी भी

आती है, क्योंकि इसी समय सच पर आकर बड़े–बड़े जबानदार लोग चुप हो जाते हैं।''[1]

परिचयात्मक भूमिका

कमलेश्वर के अब तक कुल 12 उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं, जिनकी सूची इस प्रकार हैं–

1. एक सड़क सत्तावन गलियाँ–1958
2. डाक बंगला–1962
3. लौटे हुए मुसाफिर–1963
4. तीसरा आदमी–1964
5. समुद्र में खोया हुआ आदमी–1969
6. काली आँधी–1974
7. आगामी अतीत–1976
8. वही बात–1980
9. सुबह, दोपहर, शाम–1982
10. रेगिस्तान–1985
11. कितने पाकिस्तान–2000
12. अनबीता व्यतीत–2004

उपर्युक्त उपन्यासों का परिचयात्मक अध्ययन हमारे इस अध्याय का शीर्षक है। इस प्रकार आलोच्य उपन्यासों का संक्षिप्त वर्णन, परिचय दिया जा रहा है।

'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' कमलेश्वर का सर्वप्रथम उपन्यास हैं जो सन् 1958–59 में लिखा गया था बाद में प्रकाषक की भूल के कारण 1968 में 'बदनाम गली' शीर्षक से भी प्रकाशित हुआ था। इसके बाद उनके 11 अन्य उपन्यास एक–एक करके प्रकाशित हुए। कमलेश्वर का अंतिम से पहला एवं उनके अब तक के उपन्यासों में सर्वाधिक दीर्घ फलक पर लिखित उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' हैं', जो 20 वीं सदी की अवसान वेला पर प्रकाशित हुआ, यह एक सर्वथा

उल्लेख्य, रोचक और पठनीय ही नहीं, वक्त की जुबानी बाँची गई एक लोहमर्षक और विचारोत्तेजक महागाथा है।

अब कमलेश्वर के एक–एक उपन्यास को लेकर उसके वस्तु–पक्ष और शिल्प–पक्ष पर विचार करना भी समीचीन होगा तभी उनके कृतित्व का समीचीन अध्ययन हो सकेगा।

एक सड़क सत्तावन गलियाँ

कमलेश्वर का प्रथम उपन्यास 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' 1957 में 'हंस' में प्रकाशित हुआ था। सवा सौ पृष्ठीय इस उपन्यास ने कमलेश्वर को उपन्यासकारों की प्रथम पंक्ति में बिठा दिया है।

एक सड़क सत्तावन गलियाँ मैनपुरी कस्बे की कहानी है। स्वातन्त्र्योत्तर पूर्व की कस्बाई जिन्दगी का बड़ा ही सघन एवं संवेदनात्मक चित्रण लेखक ने किया है। इस उपन्यास का नायक सरनाम सिंह है। वैसे सच बात तो यह है कि 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' में नायकत्व बिखर गया है। जिसे सरनाम सिंह, शिवराज और रँगीले के खण्डित व्यक्तियों में खोजा जा सकता है। इसी प्रकार बंसी, हेम और कमला का संयुक्त स्वरूप ही नायिका पद की पूर्ति कर सकता है।

सरनाम और बंसी इन दोनों चरित्रों की सर्जना लेखक ने अनूठे ढंग से की है। लोहे के कठोर बाह्य व्यक्तित्व के भीतर दोनों के मन मक्खन से अधिक कोमल है। सरनाम के सम्बन्ध में बंसी को सदैव यही लगा है– जब वह आँखों के सामने होता, उसका होना अनुभव में होता है तो प्रतिहिंसा धधकती रहती और आँख ओट होते ही व्याकुलता भरी छअपटाहट कुरेदने लगती हैं। न उसका जीना सह पाती थी न मरना।[2]

उसके संगीत पर मुग्ध बंसुरी उसको अपने घर से निकालकर अपमान ही नहीं बल्कि उस पर आक्षेप भी लगाती है। इसे सहज भाषा में त्रिया–चरित्र भी कहा जा सकता है और प्रेम की आपूर्ति के कारण

सहज घृणा भी। किंतु यह घृणा दूसरे के प्रति है, अपनी उपेक्षा के प्रति है। सरनाम का चरित्र बंसी से अधिक ठोस धरातल पर है। वह बंसी से प्यार करता है, नफरत करता है और फिर प्यार करता है। इस प्यार और नफरत के बीच कहीं एक विश्वास भी उसके मन में है जिसके बल पर ही वह पुलिस से बचने के लिए अपने आपकों बंसी और रंगीले के घर में छिपाता है। परन्तु बंसी के मन में उसके प्रति असीम घृणा थी। वह उसे घर से निकाल देती है और वह पकड़ा जाता है।

अन्त में रँगीले झूठी गवाही देने के फलस्वरूप जेल चला जाता है और ''सरनाम बंसिरी के बच्चे को गोद में लिए अस्पताल से लौट रहा है। बंसिरी उसकी चट्टान सी पीठ को निहारती चली आ रही है, क्यों झूठा इलजाम लगाया उसने इसी सरनाम पर।''[3]

'एक सड़क सत्तावन गलियाँ', स्वतंत्रता के पूर्व लिखी गई कहानी है, जिसका अंत 1947 के पश्चात् के भारत में हुआ है। आजादी के लिए लड़ने वाले मध्य एवं निम्न वर्ग ने जिस नए समाज की कल्पना की थी, वह मूर्ति छिन्न–भिन्न होकर बिखर गई। मास्टर हबीब, सम्पादक निर्मोहि तथा बाजा मास्टर जैसे हजारों, लाखों लोगों के अरमान बिखर गए। 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' निम्न मध्यम वर्गीय समाज के आर्थिक, सामाजिक एवं वैयक्तिक जीवन का सजीव चित्रण है। लेखक ने अपने प्रगाढ़ अनुभव और संवेदनात्मक अनुभूतियों के आधार पर इसकी कथा लिखी है। यद्यपि यह कथाकृति उत्तरप्रदेश के मैनपुरी कस्बे की कथा है, किंतु इसमें आंचलिकता अथवा लोकल कलर जैसी कोई अनुभूति नहीं है। ऐसा न होना इस उपन्यास की कमी नहीं, विशेषता ही है।

कमलेश्वर ने अपने इस प्रथम सामाजिक उपन्यास में स्वातंत्र्योत्तर एवं पूर्व काल के युग को अत्यंत सूक्ष्मता के साथ प्रस्तुत किया है। हरिजन आंदोलन, कम्पयूनिस्ट–कांग्रेस विवाद, साम्प्रदायिक तनाव, अखबार नवीसी, किराए के नेता और उनके नारों के बीच

शिवराज, हेमा, कमला, बाजा मास्टर, हफीज साहब और निर्मोहि जैसे व्यक्तियों के टूटने की आवाज तक नहीं आती है। लेकिन कुल मिलाकर टूटे हुए बिखराव से एक सम्पूर्ण चित्र उभरकर पाठक के सामने आता है। जो 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' का प्रभावपूर्ण अंकन है। स्वयं कमलेश्वर की दृष्टि में इस उपन्यास के महत्व को जानने के लिए हम उन्हीं के मत को उद्धत कर रहे हैं।–''मेरे लिए यह उपन्यास उतना ही प्रिय है जितनी प्रिय मेरे लिए माँ और मेरी जन्म भूमि मैनपुरी रहा था। इसे बेचकर करीब बीस साल तक मेरी आत्मा दुखती रही–लगता रहा जैसे–मैंने अपनी जन्मभूमि या माँ बेच दी है।''[4]

डाक बंगला

'डाक बंगला' कमलेश्वर का दूसरा उपन्यास है जो उन्होंने सन् 1962 में लिखा था। इस उपन्यास पर 'डाक बंगला' नाम की एक फिल्म भी बन चुकी है। इस उपन्यास की कहानी कोई बहुत सहज और यथार्थ कहानी नहीं है–एक स्त्री है, जिसके माध्यम से डाक बंगले के प्रतीक को रूपायित करने का प्रयास किया गया है और इस प्रतीक–योजना को पूरी तरह निर्वाहित करने में तनिक कृत्रिमता न आती, ऐसा शायद सम्भव न था। इसलिए यहाँ पर भाषा–प्रवाह उतना सहज न रहकर कृत्रिम बन गया है। ऐसा लगता है–कमलेश्वर ने यह उपन्यास एक अजीब सी रूमानियत के वषीभूत होकर लिखा है, जिसके फलस्वरूप इरा जैसी नारी का जीवन–संघर्ष पूरे प्रभाव के साथ नहीं आ पाता और पाठक उपन्यास के कुछ अच्छे विवरणों, चित्रणों और काव्यात्मक या सूत्रात्मक वाक्यों के जाल में उलझकर रह जाता है। यह भी हो सकता है कि कमलेश्वर ने यह उपन्यास एक दूसरे प्रकार की भाषा–षैली में अपने को आजमाने के लिए लिखा हो और बाद में लगा हो कि वह इस भाषा शैली के लिए नहीं बने हैं। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि 'डाक बंगला' एक असफल उपन्यास है और कमलेश्वर की उपन्यास यात्रा में 'डाक–बंगले' के

पड़ाव का कोई महत्व नहीं है। जहाँ तक अनुभूतियों का प्रश्न है विशेषकर नारी–जीवन की त्रासद और कष्टदायक अनुभूतियों का 'डाक बंगला' अपने आप में एक उपलब्धि है, क्योंकि इसमें एक साधारण नारी इरा के माध्यम से एक साधारण नारी की स्थिति और इसके आन्तरिक एवं बाह्य संघर्ष को रूपायित किया गया है।

लेखक ने मूलतः इरा और तिलक दो पात्रों को मंच पर प्रस्तुत किया है। कुछ समय के लिए सौलंकी भी सामने आता है, लेकिन कश्मीर–यात्रा के दौरान अपनी पिछली जिंदगी इरा तिलक के सामने ही खोलकर रखती है। तिलक के भावुक हो जाने पर वह तिलक से कहती है–''जिसे मैंने सब कुछ बताया है, उससे शादी नहीं कर सकती क्योंकि मैं यह नहीं कह सकती कि तुम मेरी जिंदगी में पहले हो।''[7]

क्योंकि वह जानती है कि 'जो भी मेरी जिंदगी में आया उसने जाने–अनजाने, घुमा–फिराकर या सीधे–सीधे हमेशा यहीं जानने की कोशिश की कि मैंने पहले किसी से प्यार तो नहीं किया। ....पुरुष का यही सबसे बड़ा संतोष है और हर बार मैंने अपने हर प्रेमी से यही कहा कि तुम मेरी जिंदगी में पहले हो, तुम प्रथम हो।''[8]

'डाक–बंगला' की कथा एक साथ दो स्तरों पर चलती है। वास्तव में यह कथा इरा के बाह्य और अन्तर की कहानी है। कश्मीर–यात्रा और सोलंकी इरा की बाह्य कथा के साथी हैं जबकि तिलक और इरा का अतीत उसकी आन्तरिक कथा के साथ चलते हैं। सोलंकी बतरा या डॉक्टर को उसने अपनी इस बाह्य यात्रा का साथी बनाया है। एकांत के क्षणों में वह तिलक से कहती हैं–''पर तिलक! यह तुम्हारी दुनिया बहुत कमीनी है। यहाँ औरत बगैर आदमी के रह ही नहीं सकती। .... चाहे उसके साथ उसका पति या भाई या बाप हो। कोई न हो तो नौकर ही हो, पर आदमी की छाया जरूर चाहिए।. ..... इसलिए हर लड़की एक कवच ढूंढ़ती है ......चाहे वह पति का हो, भाई का या बाप का या किसी झूठे रिश्तेदार का। इस कवच के नीचे

वह अच्छी या बुरी तरह का जीवन बिता सकती है। उसे पहनने के लिए जैसे एक साड़ी चाहिए वैसे ही यह कवच भी चाहिए।''[9]

कमलेश्वर ने इस उपन्यास की नायिका इरा को एक विशेष प्रकार की दार्शनिकता दी है। उसका हर वाक्य जैस सूक्ति वाक्य है। वास्तव में इरा का जीवन निरन्तर सहते जाने का जीवन है लेकिन उसकी अपनी विशेषता यह रही है कि हर बार नए ढंग से जीवन के क्षेत्र में मुस्कराती हुई प्रविष्ठ हुई है। जीवन से जूझते हुए चरित्रों के रूप में कमलेश्वर की इरा शायद सबसे सषक्त है। ''पात्रों के अन्तस का विश्लेषण कर उसके मानस का सूक्ष्म विवेचन करने एवं उनके व्यक्तित्व को प्रकाशित करने में कमलेश्वर सफल रहे हैं।''[10]

''कमलेश्वर अगर इस उपन्यास को अपनी सुपरिचित यथार्थवादी शैली में लिखते, तो यह और भी अधिक प्रभावषाली बन सकता था। इरा का विशिष्ट चरित्र चित्रण 'डाक बंगला' की उपलब्धि कहा जा सकता है।''[11]

लौटे हुए मुसाफिर

सन् 1963 में लिखित 'लौटे हुए मुसाफिर' उपन्यास कमलेश्वर की तीसरी सफल कृति है। भारत की आजादी और उसके बँटवारे के प्रभाव को कमलेश्वर ने ''लौटे हुए मुसाफिर'' की कहानी बनाया है। छोटे से कस्बे के लोग जो आजादी की लड़ाई में एकजुट थे, हिंदुस्तान–पाकिस्तान के विभाजन में दिल और दिमाग खो बैठे। देश के बँटवारे के साथ लोगों के दिलों में खाइयाँ चौड़ी होती चली गई। रतन और मकसूद जैसे हजारों लोगों ने अपनी और आगे आने वाली पीढ़ी के साथ जो गद्दारी की है, उसकी कीमत इस देश को काफी मँहगी चुकानी पड़ेगी। कई सत्तार और सलमा, बच्चन और नसीबन की कुर्बानियाँ भी उस भूल को नहीं सुधार सकेंगी।

कमलेश्वर ने देश के विभाजन को संवेदना के गहरे, बिल्कुल अलग स्तर पर अनुभव किया है। ठीक उसी प्रकार जैसा कि उन्होंने

भारत–चीन अथवा भारत–पाक युद्ध के प्रभाव को अपनी कहानी ''दिल्ली में एक और मौत' के रूप में भिन्न स्तर पर व्यक्त किया है। छोटे से कस्बे के लोग जो कल तक न हिंदु थे, न मुसलमान, मात्र इंसान थे, सन् 1945 के बाद अपनी इंसानियत को भूलकर केवल हिंदू और मुसलमान भर रह गए हैं। उनका प्रेम रोजी, भूत, भविष्य और वर्तमान अब पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के साथ वहाँ गया है। एक दृष्य–भय हर तरफ, हर क्षण व्याप्त है।

स्वतंत्रता के पूर्व बँटवारे का यह भूत आम हिंदुस्तानी के दिल और दिमाग पर सवार था। लेकिन वास्तविकता का पता लगाने पर जैसे सबको एक बहुत बड़ा झटका लगा। सत्तार की आत्महत्या इफित्खार का हाथरस में ताँगा चलाना, गनी मिस्त्री का फिरोजाबाद में जाकर बस जाना ही गरीब मुसलमानों को बँटवारे की नियमित के रूप में मिला है।

''लौटे हुए मुसाफिर'' के रूप में स्वतंत्रता के बाद जन्मी पीढ़ी में से कुछ ने अपने–अपने ठिकाने खोज लिए हैं और अधिकांष भटक गए हैं। यह भटकन नई पीढ़ी को उसकी विरासत में मिली है। कहानी का अन्त लेखक ने नितांत आदर्शवादी ढंग से किया है।[12]

''नसीबन खुशी से रो पड़ी थी–वे सब बच्चे बषीर, बाकर, रमजान, फते वगैरह जवान हो–होकर लौटे थे। नसीबन उन्हें अपने साथ ले गई थी। उन निषानों के पास जो अभी बाकी थे।''[13] भटके हुए मुसाफिरों में से फिर कुछ लौटकर आ गए हैं। यह बात असम्भव तो नहीं है लेकिन आज के लिए कठिन अवष्य है। कमलेश्वर की सूक्ष्म अनुभूति तथा संवेदना के कारण यह उपन्यास काफी सफल बन गया है। ''लौटे हुए मुसाफिर में आस्था, आत्मविश्वास, कर्त्तव्यपरायणता, देशानुराग एवं दायित्व निर्वाह का जो उन्होंने महान संदेश दिया है, वह आज के परिप्रेक्ष्य में अत्यंत महत्वपूर्ण है और इसलिए इस पीढ़ी के प्रकाशित उपन्यासों में कमलेश्वर का यह उपन्यास विशेष उल्लेखनीय हो जाता है।''[14]

कथात्मक शैली में लिखे गए इस उपन्यास की भाषा अत्यंत सहज और सरल है। दैनिक–जीवन में प्रयुक्त शब्दों को एक सीमा तक अभिजात–भाषा से लेखक ने बचाया है। कमलेश्वर की भाषा एक आम हिन्दुस्तानी की भाषा है, जो भाषायी राजनीति से पर्याप्त दूर है।

संवेदनाजन्य सम्प्रेषणीयता और संकेतिक अभिव्यक्ति का यह उपन्यास एक उदाहरण है। अपने चारों ओर घटता हुआ वर्तमान और टूटते हुए अतीत के बीच भविष्य के शुभ की कामना करती हुई अन्त में नसीबन दौड़कर घर गई थी और जो मिला था, उठा लाई थी – बोरा, फटी दरी, मैली चादर वगैरह और बोली ''लो इन्हें यही पेड़ के नीचे बिछा लो और आराम करो।'' और सुबह तक के लिए रात उसी पेड़ के नीचे कट गई थी।''[15]

कथात्मक शैली में लिखे इस उपन्यास की भाषा सरल, अत्यंत सहज और पात्रानुकूल है। आम हिंदुस्तानी भाषा की तरह इसकी भाषा है। आम बोलचाल के मुहावरों का प्रयोग किया गया है। कहीं–कहीं प्रतीक भी दिखाई पड़ते हैं।

तीसरा आदमी

सन् 1964 में लिखित 'तीसरा आदमी' उपन्यास कमलेश्वर की चौथी सफल कृति है। इस लघुकाय उपन्यास में एक निम्न–मध्यम वर्गीय युवक की हताषाओं, कुण्ठाओं और अटूट संदेह वृत्ति से उत्पन्न विफल जीवन की कथा है। यह उपन्यास प्रथम पुरुष ''मैं'' में शैली लिखा गया है, जिसकी कुछ अपनी सीमाएं होती है, पर वही सीमाएं इस उपन्यास को एक प्रकार की विशिष्टता प्रदान करती है। इसका कारण यह है जिसमें बीच में कुछ एक 'तीसरा आदमी' है तो उस 'तीसरे आदमी' और पत्नी के अन्तरंग प्रसंगों का खुला वर्णन मैं अपने माध्यम से नहीं कर पाता, केवल संकेतों में या जो कुछ वह देख पाता है, उसके आधार पर अपनी बात कहता है। इस विशेष स्थिति के कारण 'में' के मन का संदेह और आंतरिक द्वन्द्व, उसके भीतर के घृणा

और द्वेष भाव बड़े ही तीखे और विध्वंसक रूप में उभरकर पाठक के सामने आते हैं तथा पूरा उपन्यास अत्यंत विष्वसनीय एवं यथार्थ शैली का उपन्यास बन जाता है।

आधुनिक युग की स्थितियों ने अन्य क्षेत्रों के समान स्त्री–पुरुष सम्बन्धों को भी परिभाषित किया। इसी कारण आज ये सम्बन्ध अपने बदले हुए रूप में दिखाई देते हैं। एक ओर परम्परागत रूढ़ियों से मुक्त होकर अपन स्वतंत्र व्यक्तित्व का विकास चाहती स्त्री है तो दूसरी और संक्रातिकालीन संकट के बोध से जूझता और इन सबके बीच से अपनी पहचान और अपने व्यक्तित्व को सार्थकता की खोज करता पुरुष है। आधुनिक नारी परम्परागत तरीके से नियति या ईष्वर पर भरोसा कर जन्म भर पति की सेवा करने में विश्वास नहीं रखती। वह अपने व्यक्तित्व के प्रति सजग है, अपनी आशा–आकांक्षाओं के प्रति भी। अपनी पूर्ति के संदर्भ में ही वह पति को स्वीकार कर पाती है। उससे वह अपनी इच्छाओं की पूर्ति की अपेक्षा रखती है। इस प्रकार एक ओर पति के पत्नी की उपेक्षाएं है और दूसरी ओर अराजक तथा भ्रष्ट राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था के सम्मुख दुर्बल और असमर्थ होता जाता पति है। इसी बिन्दु पर पति–पत्नी के बीच तनाव की स्थितियाँ का निर्माण हो रहा है।

कमलेश्वर का 'तीसरा आदमी' उपन्यास पति–पत्नी सम्बन्धों के विश्लेषण को इसी बिन्दु पर प्रस्तुत करता है। 'तीसरा आदमी' के नरेष और चित्रा शादी के बाद अपना एक स्वतंत्र घर बनाना चाहते हैं। दोनों ही नये जीवन के प्रति उमंग और उत्साह से भरे हुए हैं। वे एक परिवार बनाना चाहते हैं जिसमें वनज हो, जो पूर्ण व्यक्तित्व प्राप्त कर सके। लेकिन इन कोशिषों में दोनों टूटते चले गए। अपने परिवार की कोई स्वतंत्र सत्ता व कायम नहीं कर पाये। अन्ततः वे दोनों एक दूसरे से अलग हो गये। उन्हें महसूस होता है कि उन दोनों के बीच हर समय कोई तीसरा आदमी उपस्थित है उसी के कारण वे दोनों किसी भी धरातल पर अभिन्नता की अनुभूति नहीं कर पा रहे हैं। नरेष

को यह तीसरा आदमी सुमंत के रूप में दिखाई देता है। लेकिन दोनों के अलगाव कारण सुमंत नहीं है, चित्रा की स्त्री सुलभ आकांक्षाओं और नरेष के सामर्थ्यहीन अधूरे व्यक्तित्व के बीच द्वन्द्व और संघर्ष ही वह कारण है जो दोनों को अन्ततः एक दूसरे से अलग कर देता है। तीसरे आदमी की धारणा अब हमारे यहाँ व्यक्ति के रूप में थी। लेकिन इधर पति–पत्नी के बीच भावात्मक दूरियाँ पैदा करता है और फिर धीर–धीरे शारीरिक दूरियाँ। अंत में वह बिन्दु भी आता है, जब दोनों एक दूसरे से अलग हो जाते हैं। नरेष और चित्रा आर्थिक संकट के कारण दूर होते जाने की इसी यातना दायक प्रक्रिया में से गुजरते हैं वे अंत में उस बिंदु पर पहुँचते हैं जहाँ उनके अलग होने से केवल एक परिवार ही खण्डित नहीं होता, बल्कि वे स्वयं भी अपनी–अपनी जगह टूटते हैं। यह उपन्यास उद्घाटित करता है कि पति–पत्नी के व्यक्तित्व में सामंजस्य न आने से तनाव उत्पन्न होता है। दोनों इकाइयाँ अपनी कमजोरियों को दूसरों में पूरा करना चाहती है। यदि स्त्री को अपने पति में पूर्णता का बोध नहीं मिलता तो वह किसी और में ढूंढ़ती है, इसलिए हर इकाई के बीच तनाव की स्थिति तब तक बनी रहती है जब तक दोनों अधूरे है। अतः उपन्यास की कथा, दूसरे शब्दों में संदेह की यातना की कथा है।

''तीसरा आदमी'' नाम का उपन्यास बिल्कुल सीधी–सादी अत्यंत सहज शैली में लिखा हुआ उपन्यास है जिसमें सिवाय उसके अंतिम अंश के कहीं भी नहीं लगता कि लेखक ने किसी बनावट का सहारा लिया है। इसमें पति पत्नी के बीच किसी 'तीसरे आदमी' के आने की प्रचलित कहानी को लेखक ने ऐसा सामाजिक और आर्थिक आयाम प्रदान किया है जिससे यह कहानी मात्र कहानी नहीं रह जाती व मध्यमवर्गीय दाम्पत्य की उँच–नीच का एक प्रमाणित दस्तावेज बन जाती है।''[16]

'तीसरा आदमी मनोवैज्ञानिक उपन्यास है। ऐसे उपन्यास में सामाजिक उपन्यास की सूल घटनाओं का प्रायः अभाव रहता है।

इसमें किसी मर्मस्पर्शी स्थिति के कारण पात्र–विशेष के मन में पड़ने वाले सूक्ष्म प्रभावों का ब्यौरेवार अंकन रहता है। तीसरा आदमी में पति के शंकित मन की आन्तरिक कथा कही गई है। ऐसी स्थिति किसी के भी दाम्पत्य जीवन को समूल नष्ट कर सकती है। ऐसा जान पड़ता है, मानो उपन्यासकार ने मनोवांछित कथा को मोड़ देने के लिए ऐसी स्थिति को उपन्यास में बरबस आपेक्षित किया है। नहीं तो स्वाभाविक यही है कि संदेहशील व्यक्ति अपने और पत्नी के बीच आने वाले तीसरे आदमी को सदा–कदा के लिए निकाल फेंकता। किंतु उपन्यास में यही स्थिति बराबर बनी रहती है।

संकेतिक अभिव्यक्ति उपन्यास की अपनी विशेषता है। छोटे कस्बे का आदमी महानगर में आते–जाते टूटकर बिखर जाता है। ''मैं'' की भी दिल्ली में आकर कस्बाई महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति लगातार टूटती जाती है। छोटी–छोटी बातों से दोनों के बीच में उभरती हुई खामोषी बढ़ती जाती है और वे सुमन्त के नाम से बचना चाहते हैं। प्लेट या ग्लास पकड़ने, साड़ी के नीचे प्रेस की हुई कमीज को रखने आदि छोटी–छोटी घटनाओं ने चित्रा को 'मैं' से दूर कर दिया। संषय का यह भूत बढ़ते–चढ़ते मन की सारी समस्याओं को नष्ट कर देता है। 'मैं' का यह सोचना कि 'वैवाहिक अपेक्षाओं की पूर्ति में संलग्न व्यक्ति कितना भद्दा और बेहूदा लगता है। शायद इसीलिए और भी ज्यादा कि विवाह का वह परम्परागत स्वरूप अब नष्ट हो चुका है–उसकी सामाजिक अपेक्षाएँ बदल गई हैं।[17]

अपनी सांकेतिक अभिव्यक्ति एवं आत्म–कथात्मक शैली में लिखा गया 'तीसरा आदमी' लेखक की औपन्यासिक यात्रा को बम्बई और महानगरीय सभ्यता की एक जुड़ती हुई कड़ी के रूप में प्रकट करता है। दिल्ली के विशाल तथा बहुरंगी आकाष के नीचे अत्यंत लघु जीवन जिए जाने की आशा में टूटते–बिखरते 'नये सामाजिक मूल्यों' की जिस प्रक्रिया को कमलेश्वर ने पकड़ने का प्रयत्न किया है, वह

निष्चय ही सुन्दर है। वातावरण और वर्णनात्मकता से हीन 'कमलेश्वर' का यह उपन्यास एक सफल उपन्यास कहा जा सकता है।

समुद्र में खोया हुआ आदमी

यह उपन्यास सन् 1969 में लिखा गया था। अभी तक लिखे गए कमलेश्वर के उपन्यासों में यह उपन्यास मिल का पत्थर है। निम्न–मध्यमवर्गीय परिवार की कहानी इसका आधार है। लेखक ने बदलते परिवेश में आर्थिक विषमताओं के कारण टूटकर बिखरी हुई जिंदगी का बड़े ही संवेदात्मक आधार पर स्वाभाविक चित्रण किया है।

कमलेश्वर के अभी तक के उपन्यासों में यह सम्भवतः सबसे सफल हैं, विशेष रूप से यथार्थ की दृष्टि से। प्रायः किसी भी महानगर की कथा की भाँति भीड़, अकेलापन, कर्ज, बेरोजगारी, मकानों सी सीलन, पगड़ी, हत्याएँ, जवान लड़कियाँ और उनके पीछे भागती कामुक नजरें, इसमें भी हैं।

श्यामल का परिवार अपनी व्यापक पृष्ठ भूमिका में भारत के समूचे निम्न मध्यमवर्गीय परिवारों का प्रतिनिधित्व करता है क्योंकि उपन्यास में श्यामलाल के परिवार को जिन विकट स्थितियों से गुजरना पड़ा है, करीबन इसी संघर्ष में से स्वातंत्र्योत्तर निम्न–मध्यमवर्ग का प्रत्येक परिवार गुजरा है, गुजर रहा है। स्वतंत्रता से पूर्व आर्थिक दृष्टि से विपन्न निम्न–मध्यमवर्गीय परिवारों में स्वतंत्रता के बाद नये भविष्य के प्राप्त होने का विश्वास था। लेकिन स्वातंत्र्योत्तर स्थितियों में परिवार बनने के बजाय टूटने और बिखरने की प्रक्रिया से गुजरे। आर्थिक संकट की कगार पर खड़े एक ऐसे ही परिवार के मुखिया है श्यामलाल। परिवार को चला पाने की क्षमता खो चुकने के और परिवार के लिए निरर्थक हो जाने के बावजूद वे परिवार को अपने नियंत्रण से मुक्त करने के पक्ष में नहीं है। उनके मध्यमवर्गीय संस्कारों के कारण परिवार की अन्य इकाइयाँ तारा और समीरा निष्क्रिय रहने को विवश है। अपने व्यक्तित्व को गतिमान कर

वे परिवार के लिए सार्थक इकाई बनना चाहती है पर श्यामलाल को इसमें अपनी पराजय लगती है। अपनी सामर्थ्यहीनता को जान लेने के बाद वे परिवार के संरक्षक के रूप में वीरेन को देखते हैं। वे सोचते हैं कि उनके बाद वीरेन ही परिवार का मुखिया और संरक्षक हो सकता है। अपनी सामर्थ्यहीनता को लिए–दिए वे वीरेन के योग्य होने की प्रतीक्षा में लगे रहते हैं।

लेकिन वे जैसा सोचते है वैसा नहीं होता। स्थितियाँ क्रूर होती जाती है। कदम–कदम पर श्यामलाल की भविष्य सम्बंधी आशा आकांक्षाओं पर आघात करती हुई उन्हें तोड़ती चली जाती है। पूरा परिवार अनेक स्तरीय संकटों के दबाव से गुजरता है। एक अच्छे भविष्य की तलाश में श्यामलाल गाँव छोड़ महानगर के लिए चल पड़ते हैं। लेकिन महानगर में आर्थिक समस्या इतनी भीषण होती जाती है कि उनका परिवार टूटता–बिखरता जाता है। वीरेन के रूप में भविष्य की एक उम्मीद उनके अंदर थी, लेकिन वह भी उसकी मृत्यु के बाद समाप्त हो गई। अब श्यामलाल पूरी तरह मजबूर हो गये। आर्थिक संकट के कारण वे किसी भी प्रकार का निर्णय लेने में समर्थ नहीं रहे। धीरे–धीरे उनका परिवार टूटता गया। श्यामलाल की पत्नी रम्मी आर्थिक संकट के कारण अपनी बेटी तारा के घर नौकरानी की तरह रहने लगती है। समीरा छात्रावास में रहने चली जाती है और श्यामलाल चौकीदार की नौकरी करने लगते हैं और अपनी पत्नी तथा बेटी से किसी मेहमान रिश्तेदार की तरह मिलने के लिए आते हैं। इस प्रकार महानगरीय संस्कृति और आर्थिक संकट के नागपाष में फंसा श्यामलाल का परिवार निरन्तर टूटता चला गया।

श्यामलाल का पूरा परिवार विघटित हो जाता है। उनके घर का बचा–खुचा सामान बोरों में बंद होकर हरबंस के घर पहुँच जाता है। और तो और पेंषनभोगी श्यामलाल बाप होते हुए भी अपनी बेटी तारा को चालीस रुपए माहवार में हरवंष के साथ कर देता है – जैसे घर को सिर्फ चालीस रुपए माहवार की जरूरत थी। ''वृद्ध श्यामलाल को

लगता है कि वह सिर्फ एक फालतू चीज की तरह रह गए हैं, जिसे फेंका नहीं जा सकता, सिर्फ बर्दाषत किया जाता है। जिसे सहेजा भी नहीं जाता, सिर्फ होने का महसूस किया जाता है।''[18] इस प्रकार परिवार नामक इकाई सदस्यों के रूप में विभाजित हो जाती है।

परिवारिक विघटन के लिए आर्थिक संकट के अतिरिक्त हमारे मध्यमवर्गीय संस्कार भी उत्तरदायी हैं–पुरुष पारिवारिक व्यवस्था में अंत तक नारी के व्यक्तित्व को आर्थिक स्वावलम्बन प्राप्त करने का अवसर ही नहीं मिला। पुरुष सत्ता नारी के इस रूप को स्वीकार नहीं कर पाती। स्वतंत्रता के बाद जब तेजी से हालात बदल रहे थे, प्रत्येक क्षेत्र एक नये संतुलन की मांग कर रहा था, तब भी पुरुष ने अपने संस्कारों को बदलने की कोशिश नहीं की। परिवार के मुखिया होने का उसका दुराग्रह ज्यों का त्यों बरकरार रहा। परिवार की अन्य इकाइयों को सक्रिय होने से वह रोकता रहा। जबकि वह स्वयं परिवार के निर्वाह में सामर्थ्यहीन होता चला जा रहा था, फिर भी उसे परिवर्तन स्वीकार्य नहीं था। परिणामस्वरूप परिवर्तन गतिमानता बारम्बार उसके परिवार से टकराती है, आघात करती है और इस आघात से परिवार टूटता चला जाता है। लेकिन भारक स्थितियों के सामने जब उसके ये मध्यमवर्गीय संस्कार घुटने टेक देते हैं और परिवर्तन को जब वह स्वीकार करने लगता है तब तक इतनी देर हो चुकी होती है कि भविष्य हाथ से छूट जाता है।

'समुद्र में खोया हुआ आदमी' में जीवन संघर्ष का चित्रण भी बेहतर ढंग से और बड़े पैमाने पर हुआ हैं, क्योंकि इसमें परिवार का प्रत्येक सदस्य अपने–अपने ढंग से संघर्ष से जुट जाता है तथा जिंदगी के अभावों से लड़ता हुआ उसे किसी प्रकार थोड़े अंशों में ही सही, बेहतर बनाकर जीने की कोशिश करता है।

कृष्ण कुरड़िया ने लिखा हैं ''कमलेश्वर ने बदलते सामाजिक संदर्भो को संपूर्णता के साथ 'समुद्र में खोया हुआ आदमी' उपन्यास में लिया है और मानवीय संवेदनाओं की अन्त तक रक्षा की है, उन्होंने

बदलते हुए सामाजिक परिवेश की प्रामाणिक स्थितियों को सच्चाई से अविरल रूप में प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास में श्यामलाल और तारा के माध्यम से बदलती हुई नैतिक मान्यताओं का प्रक्षेपण हुआ है।''[19]

'समुद्र में खोया हुआ आदमी' वीरेन नहीं स्वयं श्यामलाल है। वह भीषण आर्थिक असमानताओं के समुद्र में खो गया है। उसका परिवार और वह स्वयं भीड़ के सैलाब में कहीं खो गए हैं। कमलेश्वर ने जिस सांकेतिक माध्यम से संवेदनात्मक अनुभूति को अभिव्यक्त किया है उससे यह उपन्यास काफी अपना–सा लगता है। श्यामलाल, रम्भी, हरवंष और समीरा के साथ ही नमिता का चरित्र पर्याप्त स्वाभाविक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। पुलिस, हलवाई, मकान–मालिक, मजदूर और मिल का वातावरण कहानी के यथार्थ का धरातल प्रस्तुत करता है। इन सबके बीच भाषा का सहज स्वाभाविक प्रयोग 'समुद्र में खोया हुआ आदमी' को साधारण में श्रेष्ठता प्रदान करता है।

'कमलेश्वर के अन्य उपन्यासों की अपेक्षा इसमें आदर्श या विशेष प्रकार का समझौता आदि भी नहीं दिख पड़ता।' 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' से प्रारम्भ हुई लेखक की इस औपन्यासिक यात्रा की यह सर्वाधिक यथार्थ एवं उज्जवल सीढ़ी 'समुद्र में खोया हुआ आदमी' है।[20]

काली आँधी

यह उपन्यास सन् 1974 में लिखा गया था। इस उपन्यास का कथ्य राजनीतिक संस्था के मंच पर व्यक्ति सत्ता की आकांक्षा है। आधुनिक युग में जनहित के साथ जुड़ी जनतंत्रात्मक शासन–प्रणाली स्थापित हुई। जिसमें सामूहिक कल्याण को महत्व मिला। इस युग में एक और जनतंत्र जैसी समूह प्रधान शासन प्रणाली विकसित और स्वीकृत हुई वहीं दूसरी ओर व्यक्ति सत्ता की चेतना भी तीव्र हुई। यह व्यक्तिसत्ता का बोध बढ़ते–बढ़ते उस चरम पर पहुँच गया है जहाँ व्यक्ति सामूहिक संस्थाओं को भी ऊपर अपनी व्यक्ति सत्ता स्थापित

करना चाहता है। 'काली आँधी' इसी व्यक्तिगत अस्तित्व की स्थापना के लिए अपेक्षित सत्ता–पिपासा और सत्ता आकांक्षा की कहानी है।

'काली आँधी' की मालती सत्ता आकांक्षा की शिकार व्यक्ति हैं, जो अपनी व्यक्ति सत्ता को स्थापित करने में अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा देती है। मालती की सत्ता आकांक्षा उस राजनीतिक क्षेत्र से सम्बन्धित है जहाँ सफलता के लिए सिर्फ जनता के स्वप्नों को ही नहीं वरन अपने व्यक्तिगत संसार को भी दांव पर लगा देना जरूरी होता है। पहली बार की सफलता मालती के भीतर व्यक्ति सत्ता को स्थापित करने की दुर्निवार महत्वाकांक्षा को जन्म देती है। मालती किसी भी कीमत पर सफलता की सीढ़ियाँ चढ़ते जाना चाहती है। वह स्वयं को हर स्थिति के ऊपर देखना चाहती है। मालती के लिए राजनीति जनसेवा के बहाने व्यक्ति सत्ता को स्थापित करने का माध्यम है। यह दुर्निवार महत्त्वाकांक्षा लगातार सफलताओं से होती हुई मालती और उसके परिवार को एक क्षत–विक्षत बिंदु पर छोड़ देती है। नारी, पत्नी और माँ के रूप में खत्म होते जाने की शर्त पर वह सत्ता प्राप्त करती है। दूसरी ओर यह दारूण स्थिति है कि जनता को दिये गये वचन जनसेवा, आदर्श शासन व्यवस्था और सुख शांति की स्थापना आदि में से किसी के प्रति इन नेताओं को नियत ईमानदार नहीं होती। सिर्फ समय पर अपनी आवश्यकता के लिए इन सबका वे इस्तेमाल करते हैं और जनाकांक्षा के नाम पर अपनी सत्ता आकांक्षा की प्यास बुझाते है। दूसरी त्रासदी यह है कि व्यक्तियों की सत्ता पिपासा इनके साथ जुड़े व्यक्तियों की जिंदगी को भी प्रभावित करती है। मालती हमारी पूँजीवादी व्यवस्था की उन गलत महत्त्वाकांक्षाओं की ही प्रतीक है, जो अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए साधनहीन सामान्य जनों को बहकाने, फुसलाने या उनका इस्तेमाल करने के परहेज नहीं करती।

'काली आँधी' उपन्यास एक असफल दाम्पत्य की करुण कहानी जैसा लगता है परन्तु वास्तव में वह मात्र एक करुण कहानी नहीं है

और यदि उसे एक करुण कहानी ही मान लें, तो वह मात्र मालती और जग्गी बाबू की करुण कहानी नहीं है वह उन दोनों के साथ–साथ देश में व्याप्त राजनीतिक भ्रष्टाचार और छल छद्म की भी करुण कहानी है।''[21]

''दाम्पत्य सम्बन्धों की यह स्थिति आज के सामाजिक जीवन के उन परिदृष्यों को प्रस्तुत करती है जो एक किस्म का सामाजिक तनाव करती है। यह सामाजिक तनाव सम्बन्धों के उन वैविध्य को प्रस्तुत करते हैं जो सामाजिक मूल्यों पर आघात करते हैं।''[22]

इस प्रकार कमलेश्वर ने अपने उपन्यास 'काली आँधी' में आज की राजनीतिक क्षेत्र की नारी की विवशता जो उसने इस क्षेत्र में प्राप्त की है, नारी को राजनीतिक क्षेत्र में सफलता के लिए किस–किस परम्परागत नियमों को तोड़ना पड़ता है, पति व संतान से सम्बन्ध विच्छेद करने पड़ते हैं। आदि परिस्थितियों का मार्मिक चित्रण किया है। 'काली आँधी' का कथानक देश की ऐसी समसामयिक राजनीति से प्रभावित हैं, जिसमें नैतिक मूल्यों का हास हुआ और भ्रष्टाचार का विकास हुआ। ....आज की राजनीति में चलने वाली उठक–पठक को पूरी सजीवता के साथ 'काली आँधी' के पात्रों ने जिया है। यह ईमानदारी कहीं कहानी यथार्थ के इतने नजदीक हैं कि पाठक आद्योपांत इसका रस लेता है।''[23]

विचारों के साथ–साथ अभिव्यक्ति की दृष्टि से भी 'काली आँधी' एक सषक्त और सार्थक उपन्यास हैं, इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता। कमलेश्वर के पास सही शब्दों में सही बात कहने की जो कला है, वह स्थान–स्थान पर इस उपन्यास में भी उजागर हुई है यथा–''सफलता कितनी क्रूर होती है, कितनी जालिम होती है, इसका नषा कितना गहरा होता है और खुद अपनी सफलता में व्यक्ति कैसे कैद हो जाता है, इसका जीता–जागता उदाहरण है मालती जी। दुख और त्याग कितना जालिम होता है और उसमें व्यक्ति कैसे बुझ जाता है। इसका जलता हुआ उदाहरण है जग्गी बाबू।''[24]

इसी प्रकार यह संवाद भी द्रष्टव्य हैं, जो थोड़े से शब्दों में पूरी स्थिति का खुलासा कर देता है – ''तुम लोग सिर्फ चीजों का बखूबी इस्तेमाल करना जानते हो। बाढ़ आई तो उसे इस्तेमाल करो, सूखा पड़ा हो तो उसे इस्तेमाल करो, कहीं कोई लड़की भाग गई तो उसके भागने का इस्तेमाल करो .....कहीं कोई मर गया तो उसकी मौत को इस्तेमाल करो ....तुम लोगों ने आदमियों के आँसुओं और जजबातों तक को नहीं छोड़ा .....उसकी आशाओं और सपनों तक को नहीं बख्शा ....तुमने उसके सपनों को नारे बनाकर निचोड़ लिया। अब क्या बचा है आदमी के पास।''[25]

यह उपन्यास वास्तव में राजनीति पर एक व्यंग्य है। इसी उपन्यास पर बनी फिल्म 'आँधी' ने जहाँ व्यावसायिक रूप से सफलता प्राप्त की, वहीं राजनीतिक रूप से अत्यधिक चर्चित रही, जो कमलेश्वर की राजनीतिक चेतना की ही सफलता है।

आगामी अतीत

''आगामी अतीत'' में कमलेश्वर ने 'काली आँधी' की भाँति असफल सम्बन्धों की परिणति का मार्मिक चित्रण किया है। आज सामन्तवादी और पूँजीवादी सामाजिक व्यवस्था को गलत और घातक तरीकों को अपना, सफलता कैसे मिलती है। इसका चित्रण 'आगामी अतीत' में हुआ है। सन् 1976 में लिखित इस सफल उपन्यास पर 'सुपर हिट' फिल्म 'मौसम' का निर्माण हुआ है।

आधुनिक युग में मषीनीकरण की प्रवृति के परिणामस्वरूप मनुष्य जीवन को एक अभूतपूर्व गति मिली है। आज मनुष्य का जीवन तीव्र गति के नियंत्रण में आबद्ध है। यह गतिमानता प्रतिदिन बढ़ती ही जाती है। यही आज समाज में व्यक्ति के स्थान और महत्व का मानक बनी हुई है। मषनीकरण, औद्योगीकरण, अद्यतन उपकरण, अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क और जिंदगी की तीव्र गति के अनेक सन्दर्भों से जुड़कर ही व्यक्ति समाज में विशिष्ट तथा उच्चतम स्थान व सम्मान प्राप्ति का

अधिकारी हो सकता है। इसलिए आज प्रत्येक व्यक्ति इस दौड़ में दौड़ना चाहता है। परन्तु ये सम्पूर्ण साधन समाज में हर किसी को तो प्राप्त नहीं हो सकते। एक विशिष्ट और सम्पन्न उच्च वर्ग ही इसे प्राप्त कर सकता है। आधुनिक जीवन व्यवस्था में इस स्थिति को इतना अधिक महत्व दिया गया है कि जीवन के शेष मूल्यों का इसके समक्ष अवमूल्यन हो चुका है। इसी के कारण प्रतियोगिता की प्रवृत्ति प्रत्येक व्यक्ति में बढ़ती जा रही है।

आज व्यक्ति उस क्षण को महत्वपूर्ण मानता है जब वह प्रत्येक कार्य और नजर का केन्द्र हो। उसके चारों तरफ भीड़ हो वह एक अलभ्य व्यक्ति ही इस स्थिति को पाने के लिए वह कुछ भी कीमत अदा कर सकता है क्योंकि उस समय उसे जीवन की उपलब्धि उसी स्थिति में नजर आती है। प्रतियोगिता के ज्वार में वह अच्छा–बुरा नहीं सोच पाता। इस ज्वार का बहाव उसे जीवन की ऊपरी सार्थकता का बोध देता है, लेकिन ज्वार उतरने के पश्चात् सच्चाई उसके समक्ष उजागर होने लगती है कि उसे क्या मिला ? रोमांच के क्षण बीत चुके होते हैं। वक्त ने केन्द्र से उसे किनारे पर पहुँचा दिया होता है। रोमांचकारी क्षण उसके जीवन का प्राप्य नहीं थे और न ही वे उसके जीवन को सार्थक बना पाए हैं। तब वह व्यक्ति खोजने निकलता है उन सम्बन्धों और व्यक्तियों को जिनसे जीवन सार्थक होता।

''आगामी अतीत'' के कमल बोस का जीवन चा दिया होता है। रोमांचकारी क्षण उसके जीवन का प्राप्य नहीं थे और न ही वे उसके जीवन को सार्थक बना पाए हैं। तब वह व्यक्ति खोजने निकलता है उन सम्बन्धों और व्यक्तियों को जिनसे जीवन सार्थक होता।

''आगामी अतीत'' के कमल बोस का जीवन क्रूरतम सफलता और भयावह रिक्तता के दो बिन्दुओं में आबद्ध है। आधुनिक जीवन की यह एक बहुत बड़ी विडम्बना है कि अभूतपूर्व सफलता के बाद भी व्यक्ति बिल्कुल रिक्त रह जाता है।

कमलबोस रिक्तता बोध से छअपटाते हुए ऐसे ही चरित्र हैं जो अपने अतीत को लौटा लाना चाहते हैं। उस अतीत को, जो कभी उनके जीवन का प्राप्य हो सकता था। उसे सार्थकता प्रदान कर सकता था। कमलबोस दवाईयों की उस दुनियाँ से दूर भागना चाहते हैं जिसके पीछे कभी होष खोकर दौड़े थे जो उन्हें उस समय जीवन को सार्थक और महत्वपूर्ण बनाने के लिए आवश्यक लगी थी। लेकिन अब वे दवाइयों से सम्बन्धित हर चीज से, यहाँ तक कि इष्तिहार के बोर्ड से भी दूर भागना चाहता हैं। वे उस मोड़ पर पहुँचना चाहते हैं जो जिन्दगी में बहुत पीछे छूट गया था। क्योंकि बीच में जिस जिंदगी को वास्तविक समझकर जीते रहे, उन्हें अब महसूस हो रहा था कि वह सब कितना झूठ था तथा उस जिंदगी के मोड़ में वे अपनी असली जिंदगी से कितने दूर चले गये थे।

उनकी असली जिंदगी या अपना वर्ग था जो चंदा तथा गांव वालों से जुड़ा हुआ था। जो संघर्षपूण था फिर भी आत्मीयता से युक्त था। चंदा यहाँ प्रतीक है उस अर्थपूर्ण जीवन और भावनात्मक दुनियां की जो अपनी सादगी में भी उष्मापूर्ण और आत्मीय होती है। चंदा जीवन भर कमलबोस का इंतजार करती रही। कई वर्षो बाद कमलबोस को अपना दिया हुआ वचन याद आता है। वे मानसिक रूप से काफी क्षत–विक्षत हो जाते हैं। उस भावात्मक लगाव का मूल्य उन्हें अब याद आता है। जबकि वे बहुत कुछ पावर भी रिक्त रह चुके होते हैं। वास्तव में कमलबोस जिस स्पर्धात्मक युग में जी रहे थे वहाँ केवल वस्तुओं की प्राप्ति सम्भव थी, व्यक्तियों की या भावात्मक उष्मा की प्राप्ति नहीं। उनकी दुखान्तिक यही रही कि वे वस्तुओं को पाते रहे और उसी क्रम में व्यक्तियों को खोते गये। वे दवाइयों की फैक्ट्री के मालिक अवष्य बन गये लेकिन चंदा को उन्होंने खो दिया। उनके सामने सवाल चयन का था उन्हें या तो चंदा को अपने पुराने वर्ग और परिवेश को चुनना था या स्पर्धामूलक जीवन को। कमलबोस ने व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाते हुए प्रतियोगितापूर्वक जिंदगी का चुनाव

किया। परन्तु 25 वर्ष बाद अपने इस चुनाव पर उन्हें पछतावा हुआ लेकिन इस पछतावे का अब कोई मूल्य नहीं था क्योंकि फेसले का वक्त निकल चुका था।

चरित्रों के माध्यम से कमलेश्वर ने पूँजीवादी षडयंत्र का पर्दाफाष किया है। इस रचना में भाषा का एक आत्मीय बोध दिखाई देता है जो रचना को स्वाभाविकता प्रदान करता है। उनकी भाषा में चित्रात्मकता और निखार है। वर्तमान जीवन का घटनाहीन अलगाव, फीकापन और भावशून्यता को उनकी भाषा ने बिना उत्तेजना के व्यक्त किया है। कम शब्दों में सम्पूर्ण परिवेश व्यक्त हुआ हो यथा–''न बाबा न, मुझे नहीं चाहिए ये हराम के पैसे'' वह बोली। ''हराम के ? और क्या?'' कुछ करते–धरते तो हो नहीं ..... समझते हो, मैं फोकट में पैसे लेके चली जाउँगी और बाबू, एक दिन सबको ईष्वर के यहाँ जवाब देना पड़ता है। ये पाप मैं काहे को लूँ। धंधा करूँगी तो पैसे लूँगी, ये मामूली काम नहीं है बाबू, बहुत पित्ता मारकर अनजान आदमी को सहना पड़ता है। तुम औरत होते तो समझ पाते।''[26]

इस प्रकार 'आगामी अतीत' उपन्यास स्पर्धात्मक युगीन बोध के मानवीय सत्ता की विकल्पहीन स्थिति की ओर संकेत करता है। इसी बिन्दु पर कमलबोस की कहानी प्रासंगिकता के दायरे को पारकर समकालीन बोध को स्पर्ष करने लगती है।

वही बात

कमलेश्वर ने इस उपन्यास को एक विशेष गति दी है। यह उपन्यास सन् 1980 में लिखा गया है। इसकी कथा एक तेज सरिता के बहाव के समान है जिसमें पाठक कहीं रुक नहीं पाता। एक सफल दाम्पत्य जीवन की गाड़ी के लिए पति–पत्नी रूपी दोनों पहिए समान धुरियों पर एक साथ घूमने चाहिए, यही लेखक का मुख्य मन्तव्य है। प्रेम, जो जीवन की अनिवार्यता है, उसे पाठकों के सम्मुख आधुनिक भाव–बोध के साथ प्रस्तुत किया है। नायिका के जीवन में दो पुरुष

क्रमषः पति रूप में आते हैं, परन्तु दोनों ही असीमित सफलता की तलाश में अपनी पत्नी की निरन्तर बुझती जिंदगी की ओर झाँकने का प्रयास नहीं करते। परन्तु दोनों में एक मूलभूत अन्तर यही रहा है कि जहाँ एक ओर प्रशांत स्थिति को अनदेखा करता रहा और अन्त में समीरा से हाथ धोना पड़ा, वहीं दुसरी ओर नकुल का चरित्र लेखक ने अत्यंत संवेदनशील दिखाया है। वह प्रत्येक स्थिति को ध्यान में रखकर कार्य करता है, परन्तु सफलता की अंधी दौड़ में समीरा को हताष उसने भी किया है। अन्त में वह परिस्थितियों को कुछ इस प्रकार लेता है कि समीरा उसकी निकटता अनुभव करती है और वे फिर (मानसिक रूप से) दाम्पत्य सुख प्राप्त करने में सफल हो जाते हैं।

विचारों के साथ अभिव्यक्ति की दृष्टि से भी 'वही बात' एक सषक्त और सार्थक उपन्यास है। छोटे–छोटे संवादों में लेखक ने सार्थक अभिव्यक्ति की है।

''मुझे सफलता की नहीं तुम्हारी जरूरत है।''[27]

''पर तुम जानती हो समीरा, असफल आदमी की जरूरत किसी को नहीं होती।''

और ''एक के लिए समी थी, दूसरे के लिए मीरा .....समीरा तो कभी नहीं हो पायी .....।''[28]

इस प्रकार के कितने ही उदाहरण लेखक ने इस उपन्यास में सजाए हैं। साथ ही एक जीवंत पात्र खजांची बाबू के रूप में भरकर लेखक ने अपनी नारी–विषयक दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति की है– ''औरत को अपनी जिंदगी जीने का हक क्यों नहीं हैं? हम कब तक उसे बेइज्जत करते रहेंगे ? आदमी औरत बदल ले, तो ठीक। औरत आदमी बदल ले तो गलत .....। वाह क्या मैथेमेटिक्स है।''[29]

जहाँ एक ओर कमलेश्वर ने खजांची बाबू के रूप में एक समर्थ पुरुष का चित्रण किया है, वहीं दूसरी ओर सफलता की अपार भीड़ में पहुँचने के लिए प्रशांत के रूप में एक अधूरे पुरुष का निर्माण किया

है। वह नकुल के सामने बौना होता चला गया और अन्त में लेखक ने उसे एक प्रकार से 'कनफैस' करते हुए दिखाया है।

कुल मिलाकर सभी दृष्टियों से 'वही बात' एक सषक्त उपन्यास बन पड़ा है। लेखक अपनी बात कहने में पूर्ण रूप से सफल रहा है। पूरे उपन्यास में भाषा वातावरणगत व पात्रानुकूल है। आधुनिक युग में मानव किस प्रकार यांत्रिक जीवन जीने के लिए बाध्य होता जा रहा है वहीं सब यहाँ कमलेश्वर ने सफलतापूर्वक अंकित किया है।

सुबह–दोपहर–शाम

यह कमलेश्वर का 1982 में लिखित नवीनतम उपन्यास है। भारत स्वातंत्र्य–पूर्व की जन–चेतना और तात्कालीन परिस्थितियों, राष्ट्रीयता की भावनाओं, अंग्रेजों के जुल्मों के खिलाफ सषस्त्र क्रांति की लपटों की कथा को कमलेश्वर ने सुबह–दोपहर–शाम के माध्यम से उजागर किया है।

'सुबह–दोपहर–शाम' की कथावस्तु सन् 1857 ई. में हुए प्रथम स्वतंत्रता–संग्राम से लेकर गाँधीजी के अहिंसात्मक आंदोलन के प्रभावों और हिंसक क्रांति के लिए प्रतिबद्ध क्रांतिकारियों की गतिविधियों को एक सूत्र में जोड़ती है। प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में झाँसी के पतन के साथ ही अनेक देषी नरेषों और उनके सिपहसालारों को अंग्रेजी ने अपने छल छद्म और शक्ति का प्रयोग कर मौत के घाट उतार दिया था उन्हें कुचल कर आत्मसमर्पण करने को बाध्य किया। अपने साम्राज्य का विस्तार करने के क्रम में अंग्रेजों ने जिस क्रूरता एवं अमानवीयता का परिचय दिया, उसे तत्कालीन पीढ़ी भूल नहीं पाई। विद्रोह को कुचल देने के बावजूद जन–मानस में लगी विद्रोह की आग बूझी नहीं। शहीद हुए व्यक्तियों के शेष परिवारों की धमनियों में विद्रोही खून उफनता रहा। बड़ी दीदी अपने पति को सन् 1857 ई. में हुई शहादत को वह भूल नहीं पाती और अपने को वह विधवा भी नहीं मानती। वह स्पष्ट शब्दों में कहती है–''मैं तो सदा सधवा हूँ। मेरा

आदमी शहीद हुआ है।'' वह प्रतिशोध की आग में आजीवन जलती रहती है। वह सोद्देष्य जीवित रहना चाहती है। उसका उद्देष्य है कि उसकी संतान अपने पूर्वज की शहादत का बदल ले। वह अंग्रेजों को ईंट का जवाब पत्थर से दे खून का बदला खून से चुकता होने पर ही उनकी आत्मा की प्यास बुझेगी। वह अंग्रेजों से नफरत करती है। अंग्रेजों के अधीनस्थ नौकरी करने वालों या उन्हें समर्थन देने वालों को वह गद्दार की संज्ञा देती है।

यह उपन्यास अंग्रेजों के द्वारा दिये गए ऐष्वर्य, धन और सुविधाओं के प्रलोभन के शिकार लोगों की कायरता और लोभी मानसिकता को भी प्रकट करता है। अंग्रेजों ने 'फूट डालो और शासन करो' की नीति अपनाकर भारतीयों के बीच फूट डालने में सफलता पाई। बड़ी दीदी के साथ लगातार जुल्म का इतिहास जुड़ता गया और बड़ी दीदी की बेटी कलावती और उसके दामाद के साथ ऐष्वर्य, धन शक्ति तथा प्रभुता का इतिहास जुड़ता गया। बड़ी दीदी की जागीर, जमींदारियां छिनती चली गई और दामाद को तमगे और तलवार मिलती चली गई उनकी बेटी अंग्रेजों की दया के बिना तिलक की रानी कहलाने लगी और दामाद बिना का राजा–''क्योंकि उन्होंने दो अंग्रेजों की जान बचाई थी।''[(30)] बड़ी दीदी अपनी बेटी और दामाद से काफी खिन्न है, अंग्रेजों के द्वारा दी गई सौगात के संदर्भ में उसकी धारणा है कि ''इन सोगातों में तुम लोगों के पिता और बाबा के खून के छींटे हैं ये अपवित्र हैं।''[31] इन सोगातों के पीछे दौड़ने वालों को वह कभी माफ नहीं करती–इसलिए अपनी बेटी से भी सम्बन्ध विच्छेद कर लेती है ''कलावती अब कलावती नहीं, वह कलेकवती है, उसके घराने से हमारा कोई लेना –देना नही है।''[32] जाहिर है कि बड़ी दादी का संकल्प अटूट है, इसीलिए वह कभी भी समझौता नहीं करती।

बड़ी दादी का विडम्बना यह है कि वह अपने बेटों को क्रांतिकारी नहीं बना पाती। उसका पोता यषवंत उसकी ही जिंदगी में

रेलवे की नौकरी उसकी इच्छाओं के विरूद्ध करने लगता है। इसी कारण वह मर्माहत हो जाती है। क्षुब्ध होकर वह घर त्यागकर वनवास ले लेती है। बड़ी दादी का मर्माहत मानसिकता उसको आत्मनिर्वासित करती है। निराश मानस की यह नैसर्गिक परिणति है।

बड़ी दादी वनवास की जिंदगी तभी त्यागती है, जब वह अपनी प्रपोती शांता के रक्त में अपनी वैचारिक धारा का प्रवाह महसूस करती है। वह अपना अंतिम संदेश सुनाती है—'बेटा! मेरी इन आंखों में एक ही सपना कौंधता है ....तेरी बड़ी बाबा की मर्जाद रखने वाला अब कोई नहीं है। अपने बड़े बाबा को याद रखना बेटा और उनकी मर्जाद की रक्षा करना .....बस बेटा। तुमसे इसीलिए बोल दिया कि ......तू सबसे छोटी है और सबसे ज्यादा जियेगी, मेरी बात भूलेगी नाहीं न।''[33] बड़ी दादी के बाद यह शांता उसकी तीसरी पीढ़ी है और इस पीढ़ी को वह अंग्रेजों के विरूद्ध जेहाद छेड़ने का संदेश देकर अपना प्राण त्याग करती है।

इस उपन्यास में नारी—चरित्र अधिक प्रभावकारी है। शांता में भय, आतंक और दहषत का नामोनिषान नहीं है। वह राष्ट्र प्रेम को सर्वोपति मानती है। शांता अपने देवर नवीन का साथ देती है। मनोबल ऊँचा रखती है उसके बहुमूल्य प्राण की रक्षा के लिए अपनी जान जोखिम में डालती है। अंग्रेजों के पुलिस इंस्पेक्टर को डांट पिलाती है और चतुराई से अंग्रेजों की आँख में धूल झोंककर उसे खतरे के बाहर निकाल देती है। वह अंग्रेजों के साथ आए सिपाहियों में भारतीय संस्कार और राष्ट्र चेतना जगाकर उन्हें विद्रोह के रास्ते पर लाती है। अंग्रेज इंस्पेक्टर की घेराबंदी को बहादुरी के साथ तोड़ती है। बड़ी दादी के संदेश की सार्थकता वह सिद्ध कर देती है।

इस प्रकार यह उपन्यास अंग्रेजी राज्य में ढाये जाने वाले जुल्मों और जनमानस में व्याप्त दहषत को उजागर करते हुए इसके विरूद्ध जनता में विद्रोह की भावना को जन्म देता है। इसमें हिंसा का जवाब हिंसा से देने वाले क्रांतिकारियों की निर्भिक भूमिका भी चित्रित है और

इन क्रांतिकारियों की पारिवारिक स्थिति को भी उजागर किया गया है।

नरेष मेहता का 'उत्तरकथा' तथा मृदुला गर्ग का 'अनित्य' भी इसी तरह के उपन्यास है जिनमें 'सुबह–दोपहर–शाम' की तरह स्वातंत्र्य–पूर्व सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक चेतना तथा उसके जुझारू अतीत को उजागर किया गया है।

कमलेश्वर हिंदी के लब्ध प्रतिष्ठ उपन्यासकार हैं। उनके कई उपन्यासों पर सफल फिल्में भी बन चुकी हैं तथा इस उपन्यास पर भी इसी नाम से फिल्म बन चुकी है। उनकी कलम का जादू इस उपन्यास में भी पूरी तरह दिखाई देता है। यह उपन्यास, साप्ताहिक हिन्दुस्तान पत्रिका में धारावाहिक रूप में प्रकाशित होकर बहुचर्चित हो चुका है।

रेगिस्तान

कमलेश्वर की औपन्यासिक यात्रा का यह दसवाँ कदम है। इसका प्रकाषन सन् 1985 में हुआ। 'रेगिस्तान' उपन्यास राष्ट्रीय मूल्यों में आस्थावान एक ऐसे व्यक्ति की कथा है जो मोहभंग की स्थिति में विक्षिप्त हो जाता है। राष्ट्रभाषा के प्रसार का आदर्श उद्देश्य लेकर विश्वनाथ व्यग्तिगत जीवन के सारे संदर्भो को समाप्त कर देता है। लेकिन अन्त में इस आदर्श की अर्थहीनता उसके सम्मुख उद्घाटित होती है। जनतंत्रीय सरकार जनहित को ध्यान में रखते हुए आदर्श शासन–व्यवस्था स्थापित करती है। वह जन आकांक्षाओं की प्रतीक होती है। इसमें जनता अपने राष्ट्र व स्वतंत्रता को सरकार के हाथो अमानत के रूप में सौंप देती है। जिस राष्ट्र को वैयक्तिक सत्ता से भी अधिक स्नेह करती है उसके जनतांत्रिक मूल्यों की सुरक्षा के लिए वह सरकार से बाहरी अपेक्षा रखती है। क्योंकि अन्ततः राष्ट्र की सत्ता ही उसकी संस्कृति की पहचान बनाती है लेकिन आज व्यक्तिगत स्वार्थपूर्ति में लिप्त जन नेता जन–विश्वास को ठग रहे हैं। राष्ट्र में

विकास की दिशाओं के प्रति प्रयत्नशील व्यक्ति तथा राष्ट्र की स्वतंत्रता के सुख को अपने भीतर महसूस करने वाला व्यक्ति जब यह देखता है कि नीचे से ऊपर तक फैला विराट शासनतंत्र जनाकांक्षाओं के साथ खेल रहा है और उसके खिलाफ कुछ भी नहीं किया जा सकता तो वह अपना मानसिक संतुलन खो बैठता है। वह देखता है कि इस तंत्र के विरूद्ध कुछ नहीं किया जा सकता क्योंकि जनता के सम्मुख केवल शासकों द्वारा पहने गए मुखोटे आते हैं। शासन तंत्र की असलियत से जनता परिचित नहीं होती।

विश्वनाथ हिंदी भाषा के उत्थान के लिए पूर्व–पष्चिम उत्तर–दक्षिण सभी दिशाओं में घूमता रहता है। हिंदी मंदिरों की स्थापना करता है। पुस्तकें एकत्र करता है। लोगों को पढ़ाता है, किंतु धीरे–धीरे लोगों की आस्था निज भाषा में नहीं रहती। उनके संस्कारों में परिवर्तन आ जाता है। विश्वनाथ हिंदी–सेवा के लिए घर–परिवार सब कुछ त्याग देता है किंतु फिर भी उसे हिंदी का उत्थान दिखाई नहीं देता। विश्वनाथ की भाँति दूसरे देषभक्त भी इस प्रतिकूल वातावरण में धीर–धीरे भटकते–भटकते समाप्त होने लगते हैं। उनका जीवन हाहाकार करता एक रेगिस्तान बन जाता है। विश्वनाथ इन सबका प्रतीक है। अन्त में विश्वनाथ सबके मन पर जहाँ एक अमिट छाप छोड़कर जाता है, वहीं एक टीस भी छोड़ता है।

गाँधीवादी विचारधारा से ओत–प्रोत तथा देषभक्ति–भावना से परिपूर्ण यह उपन्यास अपने कथानक में राष्ट्रीय भक्ति का संचार करता है। स्वतंत्रता–प्राप्ति से पूर्व हमारे देषभक्तों, शहीदों, क्रांतिकारियों और युगीन नेताओं ने जो सपने सँजोए थे, वे स्वतंत्रता के पश्चात् एक–एक करके टूट गए।

उपन्यास का कथानक भले ही छोटा है किंतु इतने में भी यह बहुत प्रभावषाली प्रभाव छोड़ता है। हिंदी भाषा, राष्ट्र–प्रेम जैसी पावन–धारा का भविष्य होगा इस पर तीखे प्रश्न हमारे सामने खड़े होते हैं। कमलेश्वर की औपन्यासिक कला का यह एक उत्कृष्ट नमूना

है। छोटा कलेवर, थोड़े पात्र होते हुए भी कमलेश्वर बहुत बड़ी बात कहने में सफल रहे हैं।

कितने पाकिस्तान

अब तक प्रकाशित उपन्यासों में कमलेश्वर का यह दीर्घ फलक पर लिखा उपन्यास है। इसका लेखन वर्ष सन् 2000 है। उपन्यास शिल्प की दृष्टि से यह एक नवीनतम प्रयोग है। सुप्रसिद्ध लेखक कमलेश्वर का यह उपन्यास प्रकाशित होने से पूर्व ही चर्चा का विषय गया। गत दषक से इस उपन्यास के लेखन की प्रक्रिया लेखक के मन में चल रही थी, 'मन के भीतर लगातार चलने वाली एक जिरह का नतीजा है जो अभी तक जारी है और जिसके तहत आदमी और उसके जात, कबीले, राष्ट्र, सभ्यता, धर्म आदि विविध समूहों के आपसी जानलेवा संघर्ष की समस्या से वे सदैव जूझते रहे हैं। समय और इतिहास ही उनके इस अद्भुत उपन्यास के 'नायक, महानायक और खलनायक' है।[34] इसमें उन्होंने लेखक यानी 'अदीब' की कचहरी बैठाकर दुनिया भर की सभी सभ्यताओं में चलने वाले संघर्ष की समस्यओं को उठाया है, जो साहित्य के इतिहास में अपनी तरह का पहला और ज्यादा सार्थक प्रयोग है।

''भारत के वर्तमान इतिहास में 'हिंदू–मुस्लिम संघर्ष, पाकिस्तान के रूप में देश का विभाजन आदि घटनाओं को भी उन्होंने इसमें विस्तार से लिया है और इनके माध्यम से देश के भविष्य को देखने की कोशिश की हैं।''[35]

उपन्यास की परम्परागत सीमाओं, तत्वों और अवधारणाओं को दरकिनार करते हुए लेखक ने एक अनूठा प्रयोग इस उपन्यास के लेखन में किया है। आदिकाल, आर्यों का आगमन, उनका संघर्ष, मोहनजोदड़ो सभ्यता, वेदों में असुरों के युद्धों की अनुगूँज, महाभारत का युद्ध, आर्याना के डेरियस और यूनानी मिल्डियाडिस का मेराथन के मैदान में हुआ युद्ध, झेलम, कैनें, सोमनाथ, तराइन, केसी, पानीपत

जैसे युद्धों और अंग्रेजों द्वारा भारत पर हुए आक्रमणों में करोड़ो, पदम और नील की संख्याओं में बार–बार ओर हर बार मरने वाले मनुष्य और मनुष्यहंता का अन्वेषण किया है।

समय को ही नायक–महानायक और खलनायक सिद्ध करते हुए घटनाओं के चक्र को एक क्रूर काल–चक्र के रूप में प्रस्तुत कर लेखक ने युद्ध और घिनौने राजनीतिक कुप्रयासों को भी लेखक उजागर करने में सफल रहे हैं।

अनबीता व्यतीत

सद्य प्रकाशित कमलेश्वर का यह अन्तिम उपन्यास। यह लघु उपन्यासों की श्रेणी में रखा जा सकता है। यह सम्पूर्ण उपन्यास अक्षरषः 'कादम्बिनी' पत्रिका के अक्टूबर 2004 के अंक में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में उन्होंने बताया कि मनुष्य आधुनिकीकरण की इस अंधी दौड़ में शामिल होकर अपनी प्रकृति और पर्यावरण को भूलता जा रहा। किस तरह से प्रकृति और पर्यावरण को शोषण का जरिया बनाया गया, प्रकृति पर विजय को ज्यादा सराहा गया और इस विजय में मानवता की कितनी बड़ी पराजय हुई, इसे अब दषकों बाद पहचाना गया है। जीव हत्या के सम्बन्ध में स्वयं कमलेश्वर ने लिखा है–'इसी प्रकृति में तरह–तरह के जीव हैं इनमें से सबसे मासुम और सुंदर हैं वे पंछी जो हमारी वन्य संस्कृति की सम्पदा भी है। इनमें कुछ परदेषी पंछी जो सर्दियों में भारत आते हैं......। इन मासुम पंछियों के पीछे मृत्यु पढ़ी रहती जगह–जगह इन्हें पकड़ा या मारा जाता है। और इनका व्यापार किया जाता है।'' कथावस्तु में प्राचीनता और आधुनिकता का अद्‌भुत समावेष है।

हिंदी साहित्य के लब्ध प्रतिष्ठ एवं प्रतिभा सम्पन्न और सदैव चर्चित रहने वाले उपन्यासकारों में कमलेश्वर का महत्वपूर्ण योगदान है। उनके उपन्यासों में आम हिंदुस्तानी की जिंदगी दिखाई देती है। रोजी–रोटी, पति–पत्नी की कलह और प्रेम शंकाए, आस्थाएँ और

निराषाएँ आदि सब कुछ अपने यथार्थ रूप में आते हैं। उनके सभी उपन्यासों की भाषा साफ–सुथरी और सुस्पष्ट है। वातावरण एवं चरित्र सृष्टि में उनके उपन्यास अपने समय के अन्य उपन्यासों से बेहतर नजर आते हैं। सुक्ष्मातिसूक्ष्म घटनाएं भी बहुत ही सुन्दरता एवं कुशलता के साथ प्रस्तुत की गई हैं।

संदर्भ संकेत

1. (सं.) राजेन्द्र यादव– औरों के बहाने, पृ. 57
2. कमलेश्वर–एक सड़क सत्तावन गलियाँ, पृ. 79
3. वही, पृ. 120
4. वही, पृ. (भूमिका से)
5. वही, पृ. भूमिका, पृ.
6. वही, पृ. 82
7. कमलेश्वर– डाक बंगला, पृ. 92
8. वही, पृ. 92
9. वही, पृ. 75
10. सुरेष सिन्हा–हिंदी उपन्यास : उद्भव और विकास, पृ. 558
11. डॉ. आनन्द शर्मा–उपन्यास कमलेश्वर : समाजशास्त्रीय नियम पर, पृ. 57
12. वही, पृ. 58
13. कमलेश्वर–लौटे हुए मुसाफिर, पृ. 101
14. सुरेष सिन्हा–हिंदी उपन्यास : उद्भव और विकास, पृ. 558
15. कमलेश्वर–लौटे हुए मुसाफिर, पृ. 101
16. (सं.) मधुकरसिंह–कमलेश्वर, पृ. 188
17. कमलेश्वर–तीसरा आदमी, पृ. 57
18. कमलेश्वर–समुद्र में खोयाु हुआ आदमी, पृ. 13
19. (सं.) मधुकरसिंह – कमलेश्वर, पृ. 212
20. घनष्याम 'मधुप' – हिंदी लघु उपन्यास, पृ. 169

21. (सं.) मधुकरसिंह – कमलेश्वर, पृ. 93–94
22. वही, पृ. 212
23. कृष्ण कुमार बिस्वा–साढोतरी हिंदी उपन्यासों
24. कमलेश्वर–काली आँधी, पृ 12
25. वही, पृ. 6
26. कमलेश्वर–आगामी अतीत, पृ. 97
27. कमलेश्वर–वही बात, पृ. 33
28. वहीं, पृ. 75
29. वही, पृ. 79–80
30. कमलेश्वर–सुबह, दोपहर, शाम पृ.55
31. वही, पृ. 75
32. वही, पृ. 85–86
33. वही, पृ. 70
34. कमलेश्वर– कितने पाकिस्तान (फ्लैप से)
35. वहीं
36. कमलेश्वर–अनबीता व्यतीत (कादंबिनी अक्टूबर 2004) पृ. 102

सामाजिक संरचना, परिवेश तथा कमलेश्वर के उपन्यास

संसार में प्रत्येक वस्तु या स्थान, तत्व सबकी संरचना या ढाँचा अवष्य होता है। किसी भौतिक वस्तु या स्थान को लघु या दीर्घ कहकर पुकारते हैं। वस्तु के आकार, प्रकार, लंबाई, चौड़ाई, मौटाई आदि से उसकी संरचना को सामने लाते हैं प्रस्तुत अध्याय में समाज में रहने वाले व्यक्तियों एवं उनके परस्पर संबंधों को लेकर संरचनात्मक अध्ययन किया जाना है। समाज सामाजिक संबंधों का गुंफन है। अनेक संबंध मिलकर समाज का निर्माण करते हैं। समाज में इन संबंधों के अध्ययन के लिए सभी संबंधों का अध्ययन नहीं किया जाता। जो संबंध स्थायी हैं उन्हीं के अध्ययन से सामाजिक संरचना को समझा जा सकता है। जैसे परिवार, माता–पिता, पति–पत्नी आदि के आपसी संबंध तथा परिवार में समाज में स्त्री की सिथति, पुरुष की स्थिति, आदि से सामाजिक इकाई तथा सामाजिक संरचना को समझा जा सकता है। जिस प्रकार शरीर के विभिन्न अंगों का परस्पर स्थायी संबंध है, जिनका अध्ययन करते है। मतलब यह हुआ कि विभिन्न अंगों से मिलकर बनी संरचना को समाज कहते हैं उसी प्रकार समाज के विभिन्न संस्थाएं, भूमिकाएँ आदि से समाज बनता है। प्रो. गुप्ता तथा शर्मा लिखते हैं कि– ''व्यक्तियों के पारस्परिक संबंध एक निश्चित प्रकार से निर्मित एवं संचालित होते हैं जो कि एक विशिष्ट प्रतिमान को प्रकट करते हैं। यही समाज की संरचना है।''[1] मजूमदार एवं मदान सामाजिक संरचना को परिभाषित करते हुए कहा कि–''पुनरावृतीय सामाजिक संबंधों के तुलनात्मक स्थायी पक्षों से सामाजिक संरचना बनती है।[2] इसी शृंखला में श्रीमान् पारसन्स ने सामाजिक संरचना के बार में कहा–''सामाजिक संरचना परस्पर संबंधित संस्थाओं, अभिकरणों और सामाजिक प्रतिमानों तथा साथ ही समूह में प्रत्येक सदस्य ग्रहण की गयी प्रतिस्थितियों तथा भूमिकाओं की विशिष्ट क्रमबद्धता को कहते हैं।''[3] एक अन्य विद्वान पिडिंगटन

कहते हैं कि–''सामाजिक संगठन का अर्थ समाज का सामाजिक समूहों में विभाजन है, जो कि संबंधित व्यक्तियों के बीच परम्परागत रूप से प्रमाणीकृत संबंधों पर आधारित होते हैं।''[4]

विश्व के सभी समाजों की संरचना अलग–अलग होते हुए भी एक हैं। परिवार तथा सामाजिक संबंधों की बातें सभी समाजों में होती है। जिस प्रकार विभिन्न सभा, समितियाँ, क्लब, समूह मिलकर राज्य तथा समाज का निर्माण करते हैं। वैसे ही परिवार आदि मिलकर सामाजिक संरचना को बनाते हैं। सामाजिक समूह हमें आदिम समाज से लेकर वर्तमान तक मिलते हैं। इनमें अनेक तरह की संस्थाएँ, इकाइयाँ परस्पर एक दूसरे की पूरक होती है। विवाह, यौन संबंध, आयु, नातेदार, परिवार, व्यवसाय आदि सभी सामाजिक संरचना के निर्माण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। आज के आधुनिक समाजों में परिवार महत्वपूर्ण इकाई हैं। फिर वंष, समूह, गौत्र आदि का स्थान आता है। इस प्रकार सामाजिक संरचना तथा वहाँ परिवेश आदि की भूमिका का महत्वपूर्ण स्थान रहता है। सामाजिक परिवेश से कोई व्यक्ति कटकर अलग नहीं रह सकता। समाज और साहित्य का घनिष्ट संबंध रहता है। फिर भला साहित्यकार कैसे विलग रह सकता है। कमलेश्वर जैसे समाज चेतना उपन्यासकार कैसे अलग रहते। इन संबंधों का प्रतिफलन कमलेश्वर के उपन्यासों की महत्वपूर्ण देन हैं।

पारिवारिक इकाई

प्राचीनशास्त्रीय संबंधों के आधार पर समाज में सबसे छोटी इकाई है–परिवार। विश्व का प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी परिवार का सदस्य रहा है। ''समाज में परिवार ही अत्यधिक महत्वपूर्ण समूह है।''[5] मानव की समस्त सामाजिक संस्थाओं में परिवार ही एक आधारभूत और सर्वव्यापी सामाजिक संस्था है। संस्कृति के सभी स्तरों में चाहे उन्हें उन्नत कहा जाय या निम्न, किसी न किसी प्रकार का पारिवारिक संगठन अनिवार्यतः पाया जाता है।[6] विश्व की सभी

सामाजिक सभ्यताओं में परिवार किसी न किसी रूप में आदिम युग से उसके साथ रहा है। मानव की शारीरिक आवश्यकताओं तथा कामवासनाओं की पूर्ति ने परिवार को जन्म दिया। परिवार अपने सदस्यों की सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक जरूरतों को भी पूरा करता है। परिवार मानव के आत्म संरक्षण, वंशवृद्धि और जातीय संतुलन को बनाये रखने का सबसे प्रमुख साधन हैं।

परिवार में स्त्री और पुरुष दोनों नदी के दो किनारे की भाँति ही बीच में जीवनरूपी धारा सतत्, निरंतर प्रवाहित होती रहती है। परिवार ही एक सामाजिक इकाई है जो मानव को पशु अवस्था से अलग करती है। परिवार के लिए विवाह संबंध भी आवश्यक है। लूसी मेयर–परिवार का कानूनी आधार विवाह है, को मानती हैं।

हिंदी का परिवार शब्द को अंग्रेजी में 'फैमिली' कहा जाता है। Family शब्द का उद्भव लैटिन शब्द Famulus से हुआ है। वहाँ परिवार ऐसे सामाजिक समूह लिए प्रयुक्त होता है। जिसमें माता–पिता, बच्चे, नौकर और दास हों। समाजशास्त्रीय दृष्टि से इसे परिवार नहीं कहा जा सकता। परिवार में माता–पिता के अलावा पति–पत्नी तथा बच्चों का होना आवश्यक है। परिवार शब्द के अर्थ अलावा अब उसकी विभिन्न परिभाषाओं पर दृष्टिपात कर लेना आवश्यक है।

श्यामाचरण दुबे के अनुसार–''परिवार में स्त्री और पुरुष दोनों को सदस्यता प्राप्त रहती हैं, उनमें से कम से कम दो विपरीत यौन व्यक्तियों को यौन संबंधों की सामाजिक स्वीकृति रहती है, और उनके संसर्ग से उत्पन्न संतानें मिलकर परिवार का निर्माण करती हैं। इस प्रकार प्राथमिक या मूल परिवार के लिए माता–पिता और संतति का होना आवश्यक है।''[7]

मरडॉक के अनुसार–''परिवार एक ऐसा सामाजिक समूह है जिसके लक्षण सामान्य निवास, आर्थिक सहयोग और जन्म से हैं। इसमें दो लिंगों के बालिग शामिल हैं जिनमें कम से कम दो व्यक्तियों में

स्वीकृत यौन संबंध होता है और जिन बालिग व्यक्तियों में यौन–संबंध है, उनके अपने या गोद लिए हुए एक या अधिक बच्चे होते हैं।''[8]

मैकाइवर एवं पेज के अनुसार–''परिवार पर्याप्त निश्चित यौन संबंध द्वारा परिभाषित एक ऐसा समूह है जो बच्चों के जनन एवं लालन–पालन की व्यवस्था करता है।''[9]

लूसी मेयर के अनुसार–''परिवार एक गार्हस्थ समूह है जिसमें माता–पिता और संतान साथ रहते हैं। इसके मूल में दम्पती और उनकी संतान रहती हैं।''[10]

डब्ल्यू.एच.आर. रिवर्स के अनुसार–''परिवार शब्द से हमारा आषय एक छोटे से सामाजिक समूह से होता है, जिसमें माता–पिता तथा बच्चे सम्मिलित हैं।''[11]

अंत में प्रो. एम.एल. गुप्ता एवं प्रो. डी.डी. शर्मा के शब्दों में कहा जा सकता हैं कि–''परिवार को जैविकीय संबंधों पर आधारित एक सामाजिक समूह के रूप में परिभाषित कर सकते हैं। जिसमें माता–पिता और बच्चे होते हैं तथा जिसका उद्देष्य अपने सदस्यों के लिए सामान्य निवास, आर्थिक सहयोग, यौन–संतुष्टि और प्रजनन, समाजीकरण और षिक्षण, आदि की सुविधाएं जुटाना हैं।

परिवार का अर्थ, परिभाषा के साथ परिवारों के प्रमुख प्रकारों पर विचार कर लेना विषयपूर्ति के आवश्यक है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में प्रो. एम.एल. गुप्ता तथा प्रो. डी.डी. शर्मा ने अपने विषय विविधता के आधार पर परिवार को निम्नप्रकार से वर्गीकृत किया हैं[12]

1. संख्या के आधार पर–(क) मूल परिवार, नामिक परिवार, केन्द्रीय परिवार या दाम्पत्य मूलक परिवार
   (ख) संयुक्त परिवार
   (ग) विस्तृत परिवार
2. निवास के आधार पर – (क) पितृसत्तात्मक परिवार
   (ख) मातृसत्तात्मक परिवार
   (ग) नवस्थानीय परिवार

(घ) मातृ–पित् स्थानीय परिवार
(ड.) मामा स्थानीय परिवार
(च) द्वि–स्थानीय परिवार

3. अधिकार के आधार पर – (क) पितृसत्तात्मक परिवार
(ख) मातृसत्तात्मक परिवार

4. उत्तराधिकार के आधार पर–(क) पितृमार्गी परिवार
(ख) मातृमार्गी परिवार

5. वंष के आधार पर – (क) पितृवंषीय परिवार
(ख) मातृवंषीय परिवार
(ग) उभयवाही परिवार
(घ) द्वि–नामी परिवार

6. विवाह के आधार पर – (क) एक–विवाही परिवार

(ख) बहु–विवाही परिवार

बहुपत्नीक परिवार　बहुपतिक परिवार समूह　विवाही परिवार

भ्रातृ बहुपति परिवार　अभ्रातृ बहुपतिक परिवार

7. अन्य रूप – (क) जन्म मूलक परिवार
(ख) प्रजनन मूलक परिवार
(ग) समरक्त परिवार
(घ) विवाह संबंधी परिवार
(च) प्रेम परिवार

उक्त संक्षेप विवरण परिवार के प्रकारों का देना आवश्यक इसलिए था कि विष्वकृत एवं भारतीय परिवेश में इस तरह के परिवारों का प्रचलन मिलता है। कमलेश्वर के उपन्यासों में मूलतः एकल तथा संयुक्त परिवारों का वर्णन। उनकी नीति, रीति, प्रथाएँ, संबंधों परिवेश

आदि का वर्णन की व्याख्या करने का प्रयास होगा। अतः परिवार के प्रकारों का यह आरेख संक्षेप तथा सारांष रूप में हैं।.

1. एकल परिवार

इसके परिवार के अन्य नाम भी दिये जाते हैं—मूल परिवार,नाभिकीय परिवार, केन्द्रीय परिवार, दाम्पत्य मूलक परिवार, परमाण्विक परिवार, वैयक्तिक परिवार आदि। इसे एकल परिवार भी कहा जाता है। इस प्रकार का परिवार परिवारों में सबसे छोटा रूप होता है, जिसमें एक पुरुष, स्त्री तथा उसके आश्रित बच्चों से मिलकर बना होता है। बच्चे अविवाहित होने तक ही इस परिवार के सदस्य होते हैं। बाद में नहीं। विदेषी समाजशास्त्री इलियट एण्ड कैटिल के अनुसार— ''एकल परिवार की सदस्य संख्या बहुत सीमित हो गयी है, जिसमें पति—पत्नी तथा बच्चे की सामाजिक इकाई के रूप में आते हैं।''[13]

विश्व में बढ़ता औद्योगिकरण, नगरीयकरण के पश्चात् इस प्रकार की पारिवारिक इकाई अधिक देखने को मिल रही है। कृषि प्रधान व्यवस्था ने संयुक्त परिवारों को जन्म दिया तो आधुनिकीकरण तथा औद्योगिकरण व एकल परिवारों को बढ़ावा दिया है। आधुनिक भौतिकवादी जीवन शैली में व्यक्तिवादी दृष्टिकोण का विकास किया है जिससे एकांकी, एकल परिवार बढ़ने लगे हैं। इन परिवारों में समाजीकरण की बजाय दाम्पत्य संबंध को प्राथमिकता दी जाती है। रोजगार की तलाश, कृषि व्यवस्था की चौपट स्थिति से लोगों का गांवों से शहरों की तरफ पलायन होने लगा। शहरीकरण के चलते व्यक्ति खुद में समीट कर रहने लगा। धीरे—धीरे संयुक्त परिवारों का विभाजन हुआ। जिसकी अभिव्यक्ति कमलेश्वर के उपन्यास सुबह, दोपहर, शाम में हुयी हैं—''तीन टुकड़े तो संतों के घर के भी हो गए थे।''[15]

संयुक्त परिवार के दादी, दादा, चाचा–चाची तथा माता–पिता आदि संबंधी होते हैं। परिवार में बच्चों की परवरिष की समस्या नहीं होती। दादी की कहानियाँ सुनकर बच्चे समाज को समझते, जीवन की वास्तविकता का अहसास होता। अब एकल परिवार में सीमित संख्या के चलाते बच्चों की देखभाल की जबरदस्त समस्या सामने आयी हैं। ''दिन भी बहुत लंबे हो गए थे और रातें भी। न कोई कहानी सुनाने वाला था, न कोई हामी भरने वाला था। बड़ी दादी जब कहानी सुनाती थी तब लगातार हामी भरवाती थी।''[16] यह दर्द है उस पुरानी दादी के लोगों का जो अब एकाकी जीवन काट रहें हैं।

संयुक्त परिवारें में परार्थ की भावना को प्रबलता मिलती। एकल परिवार स्वार्थो पर केन्द्रित हो गयी। संबंधों में औपचारिकता अधिक आ गयी। दिखावा, झूठी सहानुभूति ने स्थान ले लिया। केवल अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए व्यक्ति मिलने आता है, अन्यथा कोई पूछता ही नहीं– ''फसल पर बड़ी अम्मा चने का साग, गन्ने का रस, सिंघाड़े का आटा, सन के फूल या दरारी की कोसी भिजवा देती। गुड, सतू और खटाई आ जाती–बस यही लेना–देना रह गया था गाँव वाले घर से। दुःख–सुख का लेना–देना खत्म सा हो गया था।[17]

कमलेश्वर के उपन्यास वही बात, सुबह–दोपहर–शाम, तीसरा आदमी आदि में एकल परिवार की अभिव्यक्ति दिखायी देती है। संयुक्त परिवार से अलग होकर जब व्यक्ति एकल स्थिति में आता है तो सामाजिक, पारिवारिक बंधन टूटते तथा एक अलग किस्म की आजादी महसूस करता है व्यक्ति। संयुक्त परिवार में बहू को बड़ों से पर्दा करके रहन, धीरे बोलना आदि कई तरह के बंधनों में रहना पड़ता है। परंतु एकल परिवार में स्वतंत्रता स्वतः ही आ जाती है। संयुक्त परिवार के घर बहुएँ अपने पतियों के साथ सड़क पर घूम नहीं सकती। जब तक सास–ससुर जीवित हैं तब तक वे घर की चाहरदीवारी से बाहर निकल नहीं सकती। 'तीसरा आदमी' उपन्यास में ऐसी स्थिति का वर्णन हैं–''शादी के बाद इलाहाबाद मुझे छोटा

शहर लगने लगा था ...। वहां बीवियों को लेकर घूमने का रिवाज नहीं था।[18] ऐसे ही एकल परिवार में स्वतंत्रता स्वयंमेव आ जाती है।– ''शाम रात में ढल रही थी। राजपथ पर पहुँचकर हमने जैसे मुक्ति की साँस ली थी ...। हम दोनों को जैसे पंख लग गए थे।''[19]

बढ़ती भौतिकता तथा आपाधापी में पारिवारिक रिश्ते कही पीछे छुट गए। नगरीकरण तथा ग्लैमर ने लोगों के परिवार बर्बाद कर दिया। नौकरी, व्यवसाय के चलते व्यक्ति अपने परिवार से जुदा होने पर अभिशप्त है। मजबूरी के चलते परिवार से व्यक्ति अलग होकर उस दर्द को सहन करता हैं – 'तीसरा आदमी' उपन्यास का नरेष इलाहाबाद से दिल्ली स्थानान्तरिक हो गया तो भरा–पूरा परिवार छोड़ना पड़ा।[20]

एकल परिवारों में बड़े मुखिया के अभाव में तथा भाग–दौड़ भरी जिंदगी में व्यस्तता के चलते व्यक्ति अपने रिश्तों से कट चुका हैं। कभी–कभी तो स्थिति ऐसी आती है कि ऐसे परिवार जन अपनी पत्नी तथा बच्चों को भी देख नहीं पाते। बहुत लंबे समय तक माता–पिता तथा बच्चों का आपसी मेल–मिलाप नहीं होता। सबका अलग समय जिससे चिनंदा लोगों के ऐसे परिवार में मानसिक तनाव, शारीरिक पीड़ा आम बात है। सामंजस्य की कमी, स्नेह, लगाव का अभाव बच्चों तथा अभिभावक में बहुत दूरियाँ पैदा कर देता हैं। कभी–कभी तो पति–पत्नी के सबसे प्रगाढ़ संबंध भी बेमानी दिखता है। व्यस्तता के चलते पति अपनी पत्नी को भी खो देता है। वही बात के प्रशांत अपनी व्यस्तता के कारण पत्नी समीरा को खो देता है। समीरा, प्रशांत से कहती हैं–''जो सच है वही कह रही हूँ और अब मैं तुमसे कहे बगैर रह भी नहीं सकती थी.. मैं अब नकुल की हूँ...।[21] इस तरह की स्थितियाँ इस आधुनिक समय समाज में आम बात होती जा रही है। वही बात का प्रशांत अपनी नौकरी में व्यस्तता के चलते पत्नी समीरा को दूसरे पुरुष की तरफ आकृष्ट होने पर मजबूर किया। प्रत्येक पत्नी भी अपनी शारीरिक आवश्यकताएँ होती है। यदि उनकी पूर्ति नहीं

होती तो निश्चित रूप से उनका पर पुरुष की तरफ मुड़ना लाजमी है वही प्रशांत–समीरा के साथ हुआ। यह स्थिति संयुक्त परिवार की पत्नी बहू के साथ नहीं होती क्योंकि वहां का परिवेश ही ऐसा होता है कि समझाने वालों की कमी नहीं होती। स्थिति को संभाला जाता है। वहाँ एकाकीपन नहीं होता।

2.संयुक्त परिवार

भारतीय सामाजिक संरचना में संयुक्त परिवार का महत्त्व प्राचीनकाल से रहा है। ने केवल हिंदू बल्कि भारत के अन्य धर्मो तथा जातियों में संयुक्त परिवार परम्परा बनी आ रही है। डॉ. आई. कर्वे का कहना है कि – भारत में परिवार का अर्थ संयुक्त परिवार से ही है।''[22] कर्वे महोदय का मानना बिल्कुल सत्य हैं। क्योंकि हमारे देश में कुछ वर्षो से एकल परिवार की धारणा बनी है, आजादी से पूर्व एवं कुछ बाद तक संयुक्त परिवार के महत्त्व एवं आवश्यकता समझी जाती रही है। संयुक्त परिवार में उन सभी व्यक्तियों को शामिल किया जाता है जो सामान्यतः एक पूर्वज की संतान होते हैं। भोजन, पूजा और सम्पत्ति की दृष्टि से भी संयुक्त होते हैं। भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों की परिभाषाओं से संयुक्त परिवार को भलीभाँति समझा जा सकता है। **डॉ. श्यामाचरण दुबे के** अनुसार–''यदि कई मूल–परिवार एक साथ रहते हों और उनमें निकट का नाता हो, एक ही स्थान पर भोजन करते हों और एक आर्थिक इकाई के रूप में कार्य करते हो, तो उन्हें उनके सम्मिलित रूप में संयुक्त परिवार कहा जा सकता है।''[23]

प्रो. गुप्ता एवं शर्मा के अनुसार–संयुक्त परिवार ऐसे परिवार हैं जिनमें कई पीढ़ी के लोग एक साथ निवास करते हैं, अथवा एक ही पीढ़ी के सभी भाई अपनी पत्नियों, विवाहित बच्चों तथा अन्य संबंधियों के साथ सामूहिक रूप से निवास करते हैं जिनकी सम्पत्ति सामूहिक होती है। परिवार के सभी सदस्य भोजन, उत्सव, त्यौहार और पूजन में सामूहिक

रूप से भाग लेते है और परस्पर अधिकारों और कर्त्तव्यों से बंधे होते हैं।''[24]

डॉ. इरावती कर्वे के अनुसार—''एक संयुक्त परिवार ऐसे व्यक्तियों का एक समूह है जो सामान्यतः एक ही घर में रहते हैं, जो एक ही रसोई में बना भोजन करते हैं, जो सम्पत्ति के सम्मिलित स्वामी होते हैं व जो सामान्य पूजा में भाग लेते हैं और जो किसी न किसी प्रकार से एक दूसरे के रक्त संबंधी हो।''[25]

प्रो. जौली के अनुसार—''न केवल माता—पिता तथा संतान, भाई तथा सौतेले भाई सामान्य सम्पत्ति पर रहते हैं बल्कि कभी—कभी इनमें कई पीढ़ियों तक की संतानें, पूर्वज तथा समानान्तर संबंधी भी सम्मिलित रहते हैं।''[26] संयुक्त परिवार की इन परिभाषाओं की शृंखला में आई.पी. देसाई की परिभाषा भी दृष्टत्य हैं—''हम उस गृह को संयुक्त परिवार कहते हैं जिसमें एकाकी परिवार से अधिक पीढ़ियों के सदस्य रहते हैं और जिसके सदस्य एक दूसरे से सम्पति, आय और पारस्परिक अधिकारों तथा कर्त्तव्यों द्वारा संबद्ध हों।''[27]

इस प्रकार संयुक्त परिवार वह है जिसमें दादा—दादी, माता—पिता, चाचा—चाची, चचेरे भाई एवं उनकी पत्नियां व बच्चे, विधवा बहिनें एवं बेटिया होती हैं। भारत के गांवों में तो अभी भी संयुक्त परिवार प्रथा प्रबल है। केरल से मालाबार क्षेत्र में नायर ब्राह्मणों के परिवार संयुक्त होते है। जिन्हें 'थारवाड़' कहा जाता है। अतः भारतीय सामाजिक संरचना की नींव, आधारशिला संयुक्त परिवार प्रथा है। यह प्रथा, परम्परा अब आधुनिकता के प्रभाव एवं विदेषी संस्कृति के आगमन से खतरे में हैं।

कमलेश्वर स्वातंत्र्योत्तर ऐसे रचनाकार हैं जो अपने परिवेश एवं भारतीय संस्कृति के परंपरागत मूल्यों के हिमायती हैं। भारतीय सामाजिक संरचना में संयुक्त परिवार का महत्वपूर्ण स्थान है। कमलेश्वर जैसे युग चेता कथाकार ने अपनी युगदृष्टि से संयुक्त परिवार की अच्छाई तथा बुराई दोनों पक्षों पर बल दिया, रेखांकित

किया। कमलेश्वर ने सुबह–दोपहर–शाम उपन्यास में दिखाया है कि परिवार का मुखिया या बड़े लोगों की बातों को परिवार के छोटे सदस्य मना नहीं करते, अवहेलना करना संयुक्त परिवार के कनिष्ठ सदस्यों की प्रकृति में नहीं होता, उनको यही सिखाया जाता है। उपन्यास में एक ऐसे ही परिवार का चित्रण हैं जिसमें वृद्धा बड़ी दादी की चलती है। –''बड़ी अम्मा जब तक तुम कुछ नहीं कहोगी, तब तक कोई नहीं बोलेगा। तुम ही कह दो तो सब ठीक हो जाएगा।[28] प्रत्येक सदस्य वृद्धा अम्मा की बात को मानता है।

कमलेश्वर स्वयं संयुक्त परिवार की उपज हैं तथा उसी परिवेश में पले–बढ़े हुए हैं। उन्होंने ऐसे परिवारों को बारे में न केवल सुना बल्कि उसे भोगा भी है। कथाकार महसूस करते हैं कि संयुक्त परिवार में कोई भी बाहरी वस्तु, चीज आती है उस पर किसी एक का अधिकार न होकर वह सब के लिए आती हैं– ''घर भी ऐसा था कोई भी चीज आती थी तो 'घर' के लिए आती थी, किसी एक के नाम लिखकर नहीं।''[29] यानी 'घर' शब्द का प्रयोग करके उपन्यासकार ने सदस्य सत्ता को खारिज किया है। तीसरा आदमी उपन्यास में ही नरेष द्वारा कथाकार ने कहलवाया कि उसकी पत्नी घर की बहू अधिक उसकी पत्नी कम है। यह सच भी है, हकीकत भी है। नरेष कहता है –''वह मेरी पत्नी तो थी ही, पर उससे ज्यादा वह एक घर की बहू थी।''[30]

संयुक्त परिवार में एकता की भावना बहुत प्रबल है। यही ऐसे परिवार की मजबूत कड़ी होती। सुख–दुःख में परिवार का प्रत्येक सदस्य सामूहिक भावना से एक साथ खड़ा रहता है कि कैसे भी अवसर हो परिवार जन मिलकर उसका समाधान खोजते हैं। एक साथ खुशी मनाते है। दुःख को एक साथ मिलकर दिमाग से निकालने का प्रयास करते हैं। वैवाहिक अवसरों पर ऐसे परिवारों की बानगी अलग तरह की होती है। तब हमें महसूस होता है कि संयुक्त परिवार की खूबसूरती तथा महता के बारे में। एक अलग तरह का आकर्षण

होता है, ऐसे अवसरों पर–''ब्याह–शादी की तारीखें, लड़की दिखाई, टिपना मिलवाई, साइत निकलवाई आदि की रस्मों के लिए खानदान के सभी लोग खड़े होते थे। वे चाहे बरसों–बरस मिलते हों, पर शुभ कारज वे समय सब मिलते थे–मय बाल–बच्चों के। बड़े–बूढ़े भी आते थे।''[31]

यह भी पूर्णतया सत्य नहीं है कि संयुक्त परिवार व्यवस्था बहुत अच्छी है। क्योंकि संयुक्त परिवारों में परिवार के कनिष्ठ सदस्य, उनकी पत्नियाँ, बच्चे सदैव दबाव, तनाव असमानता का व्यवहार भी कर जाते है। भावनाएँ मर जाती हैं। औरतों की स्थिति तो बिल्कुल बदत्तर सी हो जाती है। वह केवल भोग्या मानी जाती है। बराबर के हक की बात तो छोड़ो वह अपने पति के दर्षन केवल रात्रि में करती है। वह भी केवल सेक्स संबंधी आवश्यकता के लिए। वह केवल बच्चे जनने की मषीन समझी जाती है। पति से मिलती नही, घर की वृद्ध महिलाएँ उनकी भावनाओं को समझती नहीं और इस तरह की महिलाएँ अवसादग्रस्त हो जाती हैं। पर्दा, घूंघट में उसकी जिंदगी शुरू से अंत तक चलती है। विवाह से लेकर परिवार में रहने तक पर्दा, आवरण में रहन, नीची आवाज में बात करना उसको सीखा दिया जाता है। सुबह–दोपहर–शाम उपन्यास में ऐसी ही महिला का वर्णन है,–''हमारी शादी में तो पड़ोस के आदमियों की शक्ल तक नहीं देखी थी....देहरी के बाहर पैर नहीं रखा था। देवी मंदिर में पूजा के लिए जब हम लोग जाया करते थे तक इक्कों में पर्दे बंधते थे और सब लड़के दोनों तरफ चादरें तानकर खड़े होते थे।''[32] संयुक्त परिवार व्यवस्था में अच्छाई हैं, परंतु आधुनिक युग में स्त्री केवल भोग की वस्तु न होकर वह प्रत्येक क्षेत्र में बराबर की हकदार, भागीदार है, उसे हम नकार नहीं सकते। इस वजह से एकल परिवारों का जन्म हुआ। परिवार के शीर्ष सदस्यों की मनमानी की वजह से नीचले सदस्य बगावत पर उत्तर आते हैं।

कमलेश्वर के उपन्यासों में दोनों ही तरह (एकल, संयुक्त) के परिवारों का वर्णन, चित्रण, विश्लेषण किया गया है। दोनों ही परिवारों की न्यूवता एवं सबलता को चित्रित किया गया है।

3. पारिवारिक विघटन तथा टूटन

पारिवारिक विघटन का मतलब परंपरागत भारतीय संयुक्त परिवारों का बिखराव और एकल परिवार के रूप में परिवर्तन। नवीन परिस्थितियों के कारण होने वाले परिवर्तनों को बहुत से विद्वानों ने इसे पारिवारिक विघटन की संज्ञा दी तो कुछ ने इस स्वरूप परिवर्तन कहकर अपनी बात को सामने रखा। नयी सदी पुराने मूल्यों का पतन तथा औद्योगिकरण, नगरीकरण आदि अनेकानेक कारण है जिसके परिवारों में परिवर्तन हुआ। श्रीकृष्ण दत्त भट्ट लिखते हैं कि ''पारिवारिक विघटन का अर्थ हैं–''पारिवारिक संगठन का टूट जाना। परिवार के सदस्यों के बीच जो स्नेह, प्रेम, सहयोग और सद्भाव रहता है, जिन वस्तुओं के सहारे परिवार एक इकाई के रूप में बँधा रहता हैं, उन तंतुओं का टूट जाना ही पारिवारिक विघटन है।''[33.] पारिवारिक चेतना, भावना का हास हो जाना तथा परिवार का प्रत्येक सदस्य एक–दूसरे को अविश्वास की नजर से देखें तो परिवार का विघटन, विभाजन, टूटना निश्चित है, जो होता है। यानी बड़े परिवार (संयुक्त) का छोटे–छोटे परिवारों (एकल परिवार) में बंट जाना, विभाजित हो जाना ही, पारिवारिक विघटन कहलाता है।

पारिवारिक विघटन के पीछे कोई एक कारण न होकर अनेक कारण होते हैं। 18 वीं शती में औद्योगिक क्रांति का आगाज हुआ। जिसका असर भारतीय सामाजिक संरचना पर भी पड़ा। नतीजा हमारी कृषि प्रधान व्यवस्था तथा ग्रामीण उद्योगों का हास हो गया। लोगों का नगरों की तरफ पलायन, नौकरी की तलाश तथा भौतिकवादी जीवन शैली में व्यक्ति स्वकेन्द्रित होता चला गया। पाश्चात्य शिक्षा व्यवस्था, महिलाओं के प्रति जागरूकता, मानवाधिकार संगठनों की भूमिका,

यातायात, संचार आदि साधनों ने व्यक्ति को अपने अधिकारों के प्रति सचेत कर दिया। जिससे व्यक्ति अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो गया। परिवार के मुखिया के तानाषाहीपूर्ण व्यवहार से दुःखी पुरुष अलग रहना मंजूर किया। पारिवारिक विघटन के केवल यही कारण नहीं। ये कारण तो बाहरी हैं। आंतरिक कारण भी हैं, जैसे–तनाव, तलाक, अवैध प्रेम, लैंगिक, दोष, बुरी आदतें, मद्यपान, नैतिक पतन, जीवन मूल्यों का पतन अनेकानेक कारण है जिससे विवाह टूटने लगे। परिवार की एकता भंग होने लगी। गरीबी, निर्धनता तथा नारी के प्रति अत्याचारपूर्ण व्यवहार, नारी के प्रति दोयम दर्जे की मानने की सोच पारिवारिक विघटन के जिम्मेदार कारण हैं। हमारी सामाजिक जीवन में नैतिक मूल्यों का हास भी इसके लिए जरूरी कारण है। इस प्रकार परस्पर सामूहिकता की भावना, सोच, एकता, संगठन आदि की बात टूटकर बिखरने लगी तभी से पारिवारिक जीवन अषांत तथा अस्त–व्यस्त, कलहपूर्ण, अव्यवस्थित बनता चला गया। एक समय ऐसा आया जब एक परिवार के कई परिवार बन गये। कमलेश्वर के उपन्यासों में इन सब बातों को बहुत खुबसूरती के साथ चित्रित किया है।

स्वतंत्रता के पश्चात् प्रत्येक क्षेत्र में हुई प्रगति के कारण हमारे जीवन मूल्यों में विघटन, टूटन हो गयी। इसका असर पारिवारिक रिश्तों पर प्रतिबिंबित होता है। डॉ. के.पी. जया कहती हैं कि–''आज कल घर के सदस्यों के बीच पहले जैसा पवित्र, ऊष्मल एवं गाढ़ स्नेह संबंध तथा विश्वास नहीं रह गया है। सब पारिवारिक रिश्ते यानि पति–पत्नी, पिता–पुत्र, पिता–पुत्री, माँ–पुत्री, भाई–बहन, भाई–भाई, बहन–बहन आदि नाममात्र रह गया है। यह भी नहीं आज ये रिश्ते हरएक के अस्तित्व को बनाए रखने के लिए ही होते हैं, उससे बढ़कर कोई मूल्य नहीं रखता है।''[34] कमलेश्वर के उपन्यासों में इस तरह के बदलाव को चित्रित किया गया है।

आधुनिक जीवन शैली में परिवारों के सौहार्द्र एवं प्रेम के बीच आर्थिक पक्ष सामने आ गया है–''आधुनिक युग के परिवार में एक व्यक्ति भी बैठकर नहीं खा सकता। यहाँ तक कि रिटायर होने के पश्चात् भी मध्य–निम्नवर्गीय परिवारों में बुजुर्गो को भी नौकरी की तलाश में परिवार से बिछुड़ना पड़ता है।''[35] धन की महत्ता ने परिवारों के स्नेह रिश्तों को टूटने पर मजबूर कर दिया। अत्यधिक महत्वकांक्षा लालसा ने व्यक्ति को व्यक्ति से अलग करके यंत्र की भाँति बना दिया। परिवार के कई टुकड़े होते चले जाते हैं–''तीन टुकड़े तो संतो के घर के भी हो गए थे। बड़ी दादी कहीं थी। बड़े बाबू और बड़ी अम्मा गांव में थे और वह अपने अम्मा बाबू के पास यहाँ।''[36]

आपसी प्रेम एवं विश्वास खत्म होते चले गए। परिवार का मुखिया ही विश्वासघात करने लगा परिवार के अन्य सदस्यों से। परिणाम यह हुआ कि परिवार के कई टुकड़े होने लगे। परिवार के सदस्यों में घृणा, नफरत फैलने लगी। रेगिस्तान उपन्यास का पात्र विश्वास अपने घर से निकल जाता है। घर से घृणा करता है क्योंकि उसके ताऊ ने परिवार के मुखिया के नाते अन्य सदस्यों से अधिक जमीन हड़प ली ''ताऊ ने उसके बाबू जी के साथ धोखा किया और उनकी जमीन जायदाद हड़प ली। अब तो उसे घर नाम से घृणा होने लगती है।''[37] परिवार के सदस्यों में विचारगत मतभेद आदि कारण सामने आने लगे। इस मतभेद में पति–पत्नी का पवित्र रिश्ता भी नहीं बच पाया। 'तीसरा आदमी' उपन्यास में नरेष की पत्नी चित्रा में मतभेद खुलकर सामने आते हैं। नरेष पत्नी से मुक्त होने तक की बात कह देता है। अपने विचार दूसरों पर नहीं थोप सकते थे पर आधुनिक युगीन समाज में तो पति तथा पत्नी में बहुत अधिक वैचारिक मतभेद सामने आए हैं। नेता कहता हैं–''अगर जिंदगी मेरे साथ जिओगी तो जिंदगी का दर्षन भी मेरे साथ ही बनाना पड़ेगा।.... और नहीं बन सकता तो मुक्त होकर बना लो।''[38]

वैचारिक मतभेद, महिलाओं की आत्म निर्भरता तथा अवैध संबंध भी परिवारों के विघटन के सषक्त कारण बनकर सामने आ रहे हैं। महिलाएं आत्मनिर्भर बनने लगी तो अपने अधिकारों की भी बात समझने लगी। वह बंद मकान से खुले आसमान में विचरण करने लगी। वह पुरुष से आँख मिलाकर बात करने लगी। प्रत्येक बात में अपनी राय तथा मत समाने रखने लगी। अपनी आवश्यकताओं को बताने लगी। यदि इन आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हुई तो जुदाई होने लगी। कमलेश्वर के उपन्यासों में इस तरह की आत्म निर्भर महिलाओं का चित्रण हुआ है। 'तीसरा आदमी' की चित्रा, आगामी अतीत की निरूपमा, काली आँधी की मालती' डाक बंगला की 'ईरा' आगामी अतीत की चाँदनी भी ऐसी महिलाएँ हैं जो स्वयं आत्मनिर्भर हैं। अपना अच्छा–बूरा जानती है। अपने जीवन के निर्णय स्वयं लेती हैं। स्वयं की नजर में वे निर्णय सही हो सकते हैं परंतु वे निर्णय सामाजिकता को देखते हुए गलत हैं। वे अत्यधिक लालसा, महत्वाकांक्षा, लिप्सा की वजह से अपने परिवार को तिलांजलि देती है। परिवार टूट जाता है। अंत में पछतावा उनको होता है, परंतु तब तक सब बर्बाद हो जाता है।

स्वतंत्रता के बाद यानि आधुनिक जीवन शैली में पति–पत्नी के रिश्ते के बीच तीसरे आदमी की भूमिका को भी नकार नहीं सकते। यह तीसरा आदमी परिवारों को बर्बाद कर देता है। यह पुरुष भी हो सकता है और स्त्री। 'तीसरा आदमी' उपन्यास में चित्रा एवं नरेष के रिश्ते टूट जाते हैं, इसी आदमी के चक्कर में। 'डाक बंगला' की 'इरा' जीवन भर भटकती रहती है, परंतु घर नहीं मिल पाता। वही बात की समीरा स्वयं के पति के जीवित रहते नकुल से प्रेम करने लगती है। परिणामस्वरूप पारिवारिक विघटन होता है।[39] इन उच्च महत्वाकांक्षाओं के चक्कर में नारी परिवार को बहुत पीछे छोड़ देती है। इसके लिए वह आज की कुत्सित राजनीति के दलदल में आकर गहरे तक धँसते चली जाती है और वापस निकल नहीं पाती, परिवार टूट जाता है।

'काली आँधी' की मालती की यही स्थिति होती है। पति व बेटे से बहुत दूर हो जाती है। कमलेश्वर लिखते हैं कि–''काली आँधी की मालती दिनोंदिन राजनीतिक ऊँचाइयों को छू रही है, परंतु उसी गति से उसका परिवार विघटन की गहराईयों में जा रहा है।[40]

दाम्पत्य रिश्तों में शंका, संषय, शक, संदेह की वजह से परिवारों का विखण्डन भी सामने नजर आ रहा है। कमलेश्वर के उपन्यास तीसरा आदमी में इस तरह का वातावरण सामने आता हैं। ''नरेष अपनी पत्नी चित्रा और मित्र समान भाई सुमंत के संबंधों को लेकर शंकालु है। धीरे–धीरे वह इस निर्णय पर पहुँचता है कि उन दोनों को दिल्ली छोड़कर स्वयं भोपाल भाग जाता है।[41]

इस प्रकार कमलेश्वर के उपन्यासों युग जीवन के इस्पाती दस्तावेज हैं। उनके उपन्यासों में इस संक्रमण कालीन सामाजिक, पारिवारिक संबंधों में परिवर्तन, टूटन, विघटन की अभिव्यक्ति बहुत ही पुरजोर देखी जा सकती है। अपने युग का सत्य तथा उसके कारण परिणामों को भी कमलेश्वर कहे बिना नहीं रहते।

समाज तथा सामाजिक संबंध

सामान्यतः समाज का अर्थ व्यक्तियों के झुंड अथवा समूह के लिए प्रयुक्त किया जाता है। समाजषास्त्र में सामाजिक संबंधों के जाल को समाज कहा जाता है। परिवार तथा आपसी रिश्तों, संबंधों से मिलकर बना संगठन, समुदाय को समाज की संज्ञा से अभिहीत किया जाता है। जब बच्चा पैदा होता है तो वह एक जीव मात्र होता है लेकिन समाज में आकर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दूसरे व्यक्तियों से सहयोग लेता है। परस्पर अंतः क्रिया द्वारा वह समाज में अनेक व्यक्तियों से संबंध स्थापित करता है व परिवार में भी विभिन्न व्यक्तियों से संबंध स्थापित करता है।

स्वतंत्र पैदा हुआ बच्चा समाज में आकर अनेक तरह के संबंधों के जाल में जकड़ जाता है जिन्हें सामाजिक संबंध कहते हैं। वह

समाज में रहकर आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक, नैतिक, धार्मिक, शैक्षणिक संबंधों को बनाता है। इसी तरह के संबंधों के ताने–बाने को समाज कहते हैं। इसकी परिभाषाएँ प्रथम अध्याय में की जा चुकी है। वापस उनको उल्लिखित करना विश्लेषण करना होगा।

समाज का दायरा बहुत व्यापक है। संसार के सब तरह के संबंध विषय इसमें आ जाते हैं। सभी विषयों, सभी संबंधों की बुनियाद, आधारभूत होता है। हमारे समाज और विशेषकर भारतीय समाज के सामाजिक संबंधों का दायरा बहुत फैला हुआ है। व्यक्ति, परिवार तथा समाज एक दूसरे के पूरक हैं। जब व्यक्ति समाज का पूरक है तो हमारी सामाजिक संबंधों का पूरक होना स्वतः परिलक्षित होता है। परम्पराओं, प्रथाओं, रीतियों आदि से हमारे संबंध गूँथे हुए हैं। प्रेम, स्नेह, द्वेष, राग, ईर्ष्या, सुख, दुःख, वात्सल्य, स्पर्धा, त्याग आदि मानवीय भावनाएँ एक दूसरे से जुड़ी होकर हमारे समाज के मानवों के हृदय में व्याप्त हैं। इन्हें समाज से विलग नहीं कर सकते।

मनुष्य और समाज का मध्य संबंधों को हम कोई समझौता, मजबूरी कुछ कह नहीं सकते। ये संबंध मनुष्य जब समाज में आता है तो उसे स्वतः ही इनसे रू–ब–रू होना पड़ता है। समाज में रहकर इनके उचित तथा अनुचित का फैसला करते हैं। साथ ही आजीवन समाज से जुड़कर रहना हमारी पहचान है। मनुष्य जाति की पहचान, समाज की पहचान है। सामाजिक संबंधों की पहचान है। माता–पिता, पुत्र, भाई, बहिन, पड़ोसी आदि से संबंध रखना हमारी जीवन शैली का अंग। यह स्वतः स्फूर्त क्रिया है जो समाज में परस्पर चलती रहती है इसके लिए अलग से कोई प्रयास नहीं होता। इन्हीं पक्षों पर विचार करके अध्ययन करना इस अध्याय का अभिष्ट है।

1.स्त्री–पुरुष संबंध

समाजिक इकाई में स्त्री–पुरुष दोनों में इस विष्व–सृष्टि का निर्माण होता है। एक के अभाव में दूसरे का ही नहीं अपितु हमें इस संसार का भी अभाव मानना पड़ेगा। ''पौराणिक कथाओं के अनुसार ज्ञात होता है कि परम तत्व ने एक से अनेक की (सृष्टि रूपेण) इच्छा की। तब उसने शरीर धारण किया। जब उसने देखा एक शरीर धारण करने से सृष्टि की संभावना नहीं, तब उसने स्त्री की भी रचना की। इस स्त्री–पुरुष की रचना से ही अथवा रजोगुण के प्राधान्य से विश्व का सृष्टि–चक्र चल निकला।[42] स्त्री–पुरुष सदियों से एक दूसरे के पूरक रहे हैं। एक दूसरे से लेन देन की सोच शाष्वत और चिंतन है, तथा कहा जा सकता है–''कि सच्चाई यही है कि कुदरत ने कुछ कानून बनाए हैं ... आदमी औरत के रिश्तों का यही कानून है कि औरत कुछ देकर पाती है और आदमी कुछ पाकर देता है।[43]

स्वतंत्रता के पश्चात् समाज में बढ़ते शहरीकरण और प्रजातंत्रीय व्यवस्था के कारण शिक्षा की सुविधाओं में भी विकास हुआ। इसका प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रभाव स्त्री के मन पर भी होने लगा। अब अधिकाधिक स्त्रियाँ षिक्षा प्राप्त करने लगी। षिक्षा प्राप्ति के फलस्वरूप वह अपने परिवेश के प्रति अधिक सजग हो गई उसके मन में पुरुष जाति को अपना मालिक मानने, भय व संकोच की भावना थी वह कम होने लगी। अब वह अपने अधिकारों के प्रति सजग होने लगी। उसे महसूस होने लगा कि वह भी पारिवारिक स्थिति सुदृढ़ करने में पति का हाथ बटा सकती है। विभिन्न नौकरियों के साथ–साथ नारी विभिन्न समूह, राजनीति क्षेत्रों में भी जुड़ी।

जिस पुरुष ने अभी तक स्त्री को घर में ही रखा, देखा व उसका निर्देषन हर क्षेत्र में स्वयं दिया था अब अपनी पत्नी, बहन व माँ को काम करने जाना देखना, साथी पुरुषों व स्वयं के साथ काम व अधिकारों में बराबर का हिस्सेदार होना उसमें नहीं देखा गया। वहाँ उसके अहम् व एकांकी अधिकारों पर ठेस लगी। इस तरह से

आधुनिक युग मे नारी की सजगता और व्यक्तिसत्ता की स्थापना के आग्रह के कारण स्त्री–पुरुष के बीच अहम् जागृत होकर संघर्ष की स्थितियों का निर्माण हुआ। अपने अस्तित्व–व्यक्तित्व और आंतरिक गुणों से परिचित वह उनकी सुरक्षा के प्रति सजग एक आधुनिक नारी जीवन जीने को पुरुष की हर शर्त को स्वीकृत न कर खुद अपनी शर्त भी रखना चाहती है। वह अपने प्रति किये गये किसी भी आरोपित व्यवहार को नकारती है और पुरुष के प्रति प्रश्नवाचक और नकार की मुद्रा में दिखाई दी।

शिक्षित नारी मात्र 'पत्नी' बने रहना नहीं चाहती। वह अपने आप को मात्र 'पत्नी' बनाये रखने वाली 'पारिवारिक संस्था' और 'पति संस्था' से विद्रोह करती हुई अपनी स्वतंत्र व्यक्तिसत्ता को सुरक्षा का प्रयास करती है। वह एक अलग इकाई के रूप में अपने अस्तित्व की अनुभूति चाहती है।

परिवार की महत्वपूर्ण और आधारभूत इकाइयाँ पति और पत्नी हैं। परिवार की व्यवस्था और इनके संबंधों पर निर्भर होता है। आधुनिक युग में अन्य परम्परागत संस्थाओं के समान पुरानी पारिवारिक व्यवस्था टूट चुकी हैं, परिवार की नई व्याख्या हो रही है। यह आधुनिक परिवार केवल पति पत्नी और बच्चों तक ही सीमित है, कोई भी अतिरिक्त सदस्य इसमें सम्मिलित नहीं हो सकता। परन्तु परिवार का यह स्वरूप भी स्थायित्व प्राप्त नहीं कर सका हैं, क्योंकि नारी–मुक्ति के प्रयास और नारी के पुनर्मूल्यांकन की प्रक्रिया अभी पूरी नहीं हुई है। स्त्री और पुरुष पति या पत्नी के दृढ़ स्वरूप दो अस्वीकृत व्यक्ति के रूप में प्रतिष्ठित हुए हैं। पुरुष पारम्परिक मूल्यों से मुक्ति प्राप्त कर अपनी पहचान की तलाश के दौर से गुजरता है तो नारी का प्रयत्न पारम्परिक मूल्यों और पुरुष संस्कारों से मुक्ति प्राप्त करने और अपनी पहचान के खोज की दिषा में आगे बढ़ता है। नारी पुरुष के सामने समर्पित की निश्चित और प्रश्नहीन मुद्रा में से उभर आई है और अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व के वजन सहित आह्वान की मुद्रा में पुरुष के लिए

पश्न चिह्न बनकर खड़ी है। इसी में से स्त्री–पुरुष संबंधों के नये दोष, भिन्न–भिन्न स्थितियों और कई प्रश्न उभर रहे हैं जहाँ वैचारिक असमानता के कारण पति–पत्नी के बीच तनाव से लेकर संबंध विच्छेद, बच्चों की समस्या और स्त्री–पुरुष संबंधों के धरातल पर अस्तित्व के संकट तक की समस्या पर विचार कर सकते हैं।

शिक्षित नारी पति–पत्नी के बीच तनाव की स्थिति या पति के आरोपित व्यवहार के प्रति अब विद्रोह करती है। पति से संबंध विच्छेद कर जीवन को नये सिरे से शुरू कर पाने का मानसिक सामर्थ्य आज वह प्राप्त कर चुकी है। 'कैसी भी स्थिति में' पति के साथ रहने की मजबूरी को वह नकार देती है।

पढ़ी लिखी नारी की सोच विस्तृत व उदार होती है उसमें हीनता की भावना नहीं होती। कार्य करते हुए उसके संबंध अपने साथी मित्रों से होते है ये संबंध स्वस्थ होने पर भी उसके पति को सहनीय नहीं होते। पति इस संबंध को दोनों के बीच 'तीसरे आदमी' के रूप में लेने लगता है और यहीं से सम्बंधों में तनाव व टूटन शुरू होती है।

कमलेश्वर के उपन्यास 'तीसरा आदमी' पति–पत्नी के सम्बंधों का विश्लेषण इसी बिन्दु पर प्रस्तुत करता है। 'तीसरा आदमी' के नरेष व चित्र शादी के बाद अपना एक स्वतंत्र घर बनाना चाहते हैं। दोनों ही नये जीवन के प्रति उत्साह और उमंग से भरे हुए हैं। वे एक परिवार बनाना चाहते हैं, जिसमें वजन हो, जो पूर्ण व्यक्तित्व प्राप्त कर सके। लेकिन इस कोशिशों में दोनों ही टूटते, बिखरते गये। अपने परिवार की कोई स्वतंत्र सत्ता वे कायम नहीं कर पाए। अंत में दोनों एक दूसरे से अलग हो गये। उन्हें महसूस होता है कि उन दोनों के बीच हर समय कोई तीसरा आदमी उपस्थित है। उसी के कारण वे दोनों किसी भी धरातल पर अभिन्नता की अनुभूति नहीं कर पा रहे हैं। नरेष को यह तीसरा आदमी सुमंत के रूप में दिखाई देता है। लेकिन दोनों के अलगाव का कारण सुमंत नहीं हैं, चित्रा की स्त्री सुलभ आकांक्षाओं उसकी सजगता, व्यक्तिसत्ता की स्थापना की आकांक्षा और नरेष के

सामर्थ्यहीन अधूरे व्यक्तित्व के बीच द्वन्द्व और संघर्ष ही वह कारण है जो दोनों को अन्ततः एक दूसरे से पृथक कर देता है। कमलेश्वर वृत उपन्यास 'काली आँधी' भी इसी सत्य को प्रकट करता है।

मालती शिक्षित है वह पति का प्रोत्साहन पाकर राजनीति में प्रवेष करती है पर मालती की सत्ता प्राप्ति की पिपासा तथा और ज्यादा प्राप्ति की कामना उन्हें पति व बच्चे से दूर कर देती है।

प्रथम सामान्य सफलता मालती के भीतर व्यक्तिसत्ता को स्थापित करने की दुर्निवार महत्वाकांक्षा को जन्म देती है वे किसी भी कीमत पर सफलता की सीढ़ियां बढ़ते जाना चाहती है। मालती के लिए राजनीति जनसेवा के बहाने व्यक्तिसत्ता को स्थापित करने का माध्यम है। यह दुर्निवार महत्वाकांक्षा लगातार सफलताओं से होती हुई मालती और उसके परिवार को एक क्षत–विक्षत बिन्दु पर छोड़ देती है। नारी, पत्नी और माँ के रूप में खत्म होने जाने की शर्त पर वह तरक्की करती जाती है।

कमलेश्वर तथा अन्य स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासकारों ने उपन्यासों में प्रदर्शित किया है कि आधुनिक शिक्षित भारतीय नारी ने अपने जीवन का 'पैटर्न' बदला है और अपने तथा पुरुष से सम्बद्ध उसके दृष्टिकोण में क्रांतिकारी परिवर्तन आया है। परम्परागत जीवन–मूल्यों और नैतिक निषेधों के प्रति उसका रूख बहुत आक्रामक और विद्रोही मुद्रा को सांकेतित करता है। उपन्यासकारों ने नारी की इस आक्रामक और विद्रोही मुद्रा को प्रायः काम संबंधों से जोड़कर देखा है। वही दाम्पत्य–जीवन में तनाव और विस्फोट के प्रसंग हैं तो वहीं दाम्पत्येत्तर काम संबंधों के संदर्भ में आधुनिक नारी की अस्मिता को उभारा और तलाशा गया है। दाम्पत्य जीवन में पति के परम्परागत एकाधिकार और निरंकुशता की तीसरी प्रतिक्रिया आधुनिक शिक्षित नारी के मानस में है। पुरानी रूढ़ियों के कारण पति–पत्नी बिना किसी परिचय और भावात्मक लगाव से एक दूसरे से जुड़ने को बाध्य हो जाते हैं। ''रूचियों की भिन्नता नारी के मन में दासता की अनुभूति ओर पति

की निरंकुशता दाम्पत्य सम्बन्धों में तनाव की पृष्ठभूमि निर्मित करती है। 'काले फूल का पौधा' की सरोज, 'बीमार शहर' की केतकी, 'आपका बंटी' की शकुन का दाम्पत्य जीवन क्रमषः तनाव और घुटनमय होता गया है। सरोज अपने पति को लिखे पत्र में स्पष्ट कर देती है कि हम दोनों सिर्फ जुड़े हैं हमारा मिलन नहीं हुआ है।''[44]

इस प्रकार वर्तमान समय में शिक्षा के बढ़ते प्रसार के परिणामस्वरूप नारी की स्थिति और विचारधारा दोनों बदलने लगे हैं। अब वह पति की दासी बनी रहना नहीं चाहती बल्कि अपने व्यक्तित्व को विकसित करने व स्वयं को स्थापित करने के लिए समान स्थिति की मांग भी करती हैं–''बहुत देखा और बहुत सहा है मैंने, तिलक। लोग आत्मा की बात करते हैं, पर तन पर एकान्तिक अधिकार चाहते हैं। ऐसा अधिकार जो उनकी वासना की घड़ी के मुताबिक चलता हैं।''[45]

आज समाज और सेवा के प्रत्येक क्षेत्र में स्त्रियों ने अपनी दस्तक दी है। पुरुषों के मुकाबले उनके अवसरों में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। यह समाज और राष्ट्र के लिए शुभ संकेत हैं।

2. पड़ोसी–पड़ोसी संबंध

मानव सामाजिक प्राणी है। समाज में रहना तथा समाज के सभी सामाजिक कर्त्तव्यों का, जिम्मेदारी का निर्वहन करना उसकी दिनचर्या, या कहें कि दैनिक गतिविधियों का हिस्सा है। समाज में बहुत घनिष्ठ संबंध होते है जिसमें पारिवारिक संबंध कहलाते है। इन संबंधों के साथ हमारे आसपास के लोगों के साथ हमारा उठना–बैठना हमारी बातें उनसे आदान–प्रदान करना हमारे सार्वजनिक को गतिशीलता प्रदान करता है। मनुष्य के सुख–दुःख तथा सभी प्रकार के सामाजिक मांगलिक तथा अमांगलिक कार्यो को करने के लिए परिवारजनों के अलावा हमारे पड़ोसियों की अहम भागीदारी होती है। मध्यमवर्गीय परिवारों में तो पड़ोसियों को अपने परिवारजन की तरह का दर्जा देते

हैं। आपस में एक पड़ोसी दूसरे से मिलकर चलेगा तो न केवल समाज बल्कि राष्ट्र की प्रगति होती है। प्रगतिशील राष्ट्र वही होता है जिसके समाज के लोगों में समाजवाद की भावना हो। समानता की बात दिमाग में हो। पड़ोसी के प्रति नरम दिल हो, उदार दृष्टिकोण हो तो न केवल समाज बल्कि राष्ट्रीय उन्नति होती है।

मनुष्य के सुखद, शांतिपूर्ण जीवन शैली के लिए पड़ोसी से कैसे संबंध है, जरूरी होता है। अच्छा पड़ोसी वातावरण को सुखद बना देता है तो बूरा पड़ोसी वातावरण को नरक बना देता है। कमलेश्वर बहुत ही सजग, सचेत उपन्यासकार हैं। उनकी सामाजिक दृष्टि बहुत परिपक्व तथा मजबूत है। उन्होंने न केवल इस तरह के संबंधों को देखा बल्कि भोगा भी। उसी सत्य के सहारे वे अपने उपन्यासों में अभिव्यक्ति की पूर्णता के साथ उतरते हैं। पड़ोसी का कर्तव्य है कि वह अपने पड़ोसी के सुख–दुःख में समान रूप से भागीदार रहे। कभी–कभी पड़ोसी के लिए दूसरे पड़ोसी को परेशानी, कष्ट भी उठाना पड़ जाता है।

कमलेश्वर ने अपने उपन्यास 'लौटे हुए मुसाफिर' में इस बात को अभिव्यक्त किया है कि एक पड़ोसी दूसरे के कष्ट में समान भागीदार होता है। वह उसे आफत या परेशानी नहीं समझता बल्कि अपना दायित्व मानता है। ''तुम्हें तो ये लोग परेशान नहीं करेंगे ? मेरी वजह से तुमसे भी कहीं दुष्मनी न मानने लगे ? तब नसीबन अपना फर्ज अदा करती हुई स्पष्ट कह देती है कि–''मैं उनसे नहीं डरती।[46] वह आगे बढ़कर फिर कहती है कि–''इन्हें मैं साथ घर ले जाती हूँ, वहीं रखूँगी। जो होगा सो देखा जाएगा। नसीबन ने कहा।''[47]

इसी उपन्यास में पड़ोसी का धर्म फिर उजागर हुआ है। जब बच्चन के पीछे पुलिस पड़ी थी, तो नसीबन जात–पाँत, धर्म, सम्प्रदाय से उपर उठकर बच्चन के बच्चों को अपने घर ले आती है। वह अपने पड़ोसी होने का धर्म तथा भारतीय सांस्कृतिक साझी विरासत को समझती है। बच्चन के बच्चों को अपने घर ले आती है। लोग कहते

हैं आपने फालतू जोखिम क्यों ली तो नसीबन उपन्यास के एक अन्य पात्र साँई को स्पष्ट जवाब देती है। ''साँई, असल बात यह है कि ये बच्चे तुम्हारी आँखों में खटक रहे हैं। मेरे लिए धर्म कर्म का सवाल नहीं है सांई, सीधी सी बात है, मुझसे इन बच्चों को बिलखता नहीं देखा गया, सो ले आई। कल को इनका बाप आ जाएगा, तो चले जाएँगे।''[48] यह है भारतीय संस्कृति के मूल्य जिससे हमारा देश आज भी सदियों से उजड़ता, मिटता, थपेड़े खाता हुआ भी विश्व व्यवस्था में अपनी सांस्कृतिक गरिमा को बचाए हुए हैं।

इसी उपन्यास में पड़ोसी के धर्म संबंधी कथन सामने आए हैं। नसीबन को लोग कहते हैं कि बच्चन के बच्चों को अनाथालय भेज दिया जाए परंतु नसीबन साफ इन्कार कर देती है–''कैसे कर दूँ, काहे को कर दूँ? कल को इनका बाप आएगा तो। यह भी हँसी–ठट्ठा है? अरे ये बच्चें हैं कोई काठ–किवाड़ तो नहीं जो पड़े रहेंगे वहाँ। खूब आए आप लोग बच्चे हवाले कर दो। नसीबन कि फिर पड़ी वाह भाई वहा! जो करना हो करो जाकर .....पुलिस नहीं, लैफ्टेन को बुला लाओ।[49]

एक बार बच्चन किसी बात पर नसीबन का अपमान कर देता है। परंतु फिर भी बच्चन के संकट में फँस जाने पर नसीबन उसकी बहुत सहायता करती है। वह सत्तार के साथ मिलकर बच्चन तक कुछ पैसे भी पहुँचाती है। यह हमारे देश में पड़ोसी का धर्म संबंध, रिश्ते। सतार नसीबन से कहता है कि आपके आगमन के बावजूद आप इतनी सहायता क्यों कर रही है तब नसीबन कहती है–''हैं तो अपने पर विपदा में घिरा है बेचारा .... इधर चोरी छिपे रहते हुए काम धाम भी नहीं कर पाया होगा, ऊपर से बच्चे जा रहे हैं, कुछ जरूरत भी पड़ेगी उसे ... कह देना, अपने समझकर ही खर्च करें। कोई बात मन में न लाएँ।[50]

'वही बात' उपन्यास में भी इसी प्रकार पड़ोसी के साथ हमारे संबंध कैसे हो, तथा पड़ोसी हमारे लिए कितना सहायक हो सकता

है। एक सच्चा पड़ोसी हमारे परिवार के सदस्य के बराबर महत्वपूर्ण होता है। ऐसा ही एक उदाहरण है। आप दोनों जरा मेम साहब का ख्याल रखिएगा ...। आप फिक्र मत कीजिएगा, सर ...खचांजी बाबू ने कहा तो प्रशांत मुस्करा दिया। बड़े आत्मीयता भरे स्वर में बोला .... आई एम रियली लक्की कि इतने अच्छे लोग मेरे साथ काम कर रहे हैं।[51] रेगिस्तान उपन्यास में कमलेश्वर कहते हैं कि ''एक सजग एवं सहृदयी पड़ोसी अपने पड़ोसी का हर संभव ध्यान रखता है। विशेषकर उसके कष्ट के समय तो वे और अधिक आत्मीयता से संबंध बनाए रखना उचित समझते हैं। पड़ोसी के दुःख–कष्ट को अपना समझना उनकी नैतिकता का परिचायक हैं।''[52]

पड़ोसी का कर्तव्य है कि अपने पड़ोसी से आत्मीयता पूर्ण व्यवहार से पेष आए तथा अपने पड़ोसी के संबंध गलत बातें न करें अफवाहें न फलाएँ। पड़ोसी के कष्ट के समय साथ देवें तथा कुछ गलत तरह की बातें हो तो उन्हें तूल देने की बजाय उन्हें दबाने की कोशिश करें तथा बाहर सही, सच्ची सूचना देवें तथा अच्छे, सच्चे, ईमानदार पड़ोसी की भूमिका अदा करें। 'आगामी अतीत' उपन्यास में इस तरह की बातें सामने आती हैं–''उन जैसी औरत होना मुष्किल हैं, बाबू। साक्षात् देवी हैं। यहाँ इसी कोठारी में रहती थी। नियम से किराया देती थी... गरीबों को दवादारू मुफ्त देती थी। वैदक उन्हें बहुत अच्छी आती थी।''[53]

हमारे पड़ासी के किसी भी प्रकार के मंगल कार्यो में पड़ोसी की उपस्थिति उस कार्यक्रमों की शोभा को द्विगुणीत कर देती है। ''विवाह– शादी जैसे अन्य मंगल महोत्सव में पड़ोसियों का होना उतना ही अनिवार्य है जितना संबंधियों का होना। उस समारोह में चार चाँद इन पड़ोसियों के आने से ही लगते हैं...।[54] आपस में तीज–त्यौहार के अवसर पर सब जाति, धर्म, सम्प्रदाय की संकीर्णता से निकलकर श्रद्धा तथा विश्वासपूर्वक कंधे से कंधा मिलाकर एक दूसरे के त्यौहारों, व्रतों, उत्सवों में उपस्थित होना अपनत्व भाईचारें की

भावना बढ़ाता है। सच्चे पड़ोसी की यही निषानी है। उपर्युक्त उपन्यास में ही एक ऐसा ही प्रसंग है–''मिर्जा साहब की हवेली के बाहर बारात रोक ली गई। पता नहीं उनके यहाँ इतनी जल्दी इन्तजाम कैसे कर लिया गया। जैसे ही बारात रूकी गुलाबपाषी होने लगी और मिर्जा साहब ने बाबू कामताप्रसाद को छाती से लगा लिया।''[55] इस बीच पालकी को हवेली के आँगन में बुलवा लिया गया था और बेगम साहिबा ने बहू की बलैया लेकर प्यार किया था और मुँह दिखाई करके चाँदी के बहुत से गहने पालकी में रख दिये थे।''[56] इस तरह की नैतिकता, उदारता, दरियादिली पड़ोसी के प्रति दूसरे पड़ोसी के दिल में सदैव रहे, तभी पड़ोसी का वातवरण सुखमय बन पाता है। एक सच्चे पड़ोसी का धर्म तथा कर्तव्य है कि अपने पड़ोसी का पूर्णतया साथ देवं। उसे सही मार्ग पर चलने के लिए सदैव प्रोत्साहित करता रहे।

3. माता–पिता संबंध

समाजिक संबंधों में परिवार इकाई सर्वप्रथम इन संबंधों का पुंज है। पारिवारिक संबंधों में परिवार में रहने वाले समस्त तरह के रिश्तों के बीच आपसी सौहार्द्र एवं समरसता से बनते हैं। परिवार में अनेक तरह के पद है जैसे–माता, पिता, दादा, दादी, भाई, बहन, चाचा, चाची इनके बीच आपसी संबंधों का निर्माण ही हमारे सामाजिक संगठन, संरचना, की आधारषिला है। हमने पहले परिवार के प्रकारों का अध्ययन किया जिसमें एकल तथा संयुक्त दोनों तरह के परिवार सम्मिलित हैं। दोनों ही तरह के परिवारों में माता–पिता का महत्वपूर्ण स्थान हैं। इन्हीं के संसर्ग से संतान उत्पन्न होती है, परिवार बढ़ता है, प्रगति करता है। माता–पिता के बीच आपसी सामंजस्य, प्रेम, स्नेह ही परिवार को स्वर्ग तथा नरक बनाते हैं। यदि इन दोनों के बीच आपसी विचार मेल खाते हैं तो परिवार स्वर्ग बन जाता है। आगे कि संताने अपना भविष्य सुखद बनाती है तथा इनकी छत्रछाया के नीचे अपना

भविष्य का निर्माण करती है। यदि इन दोनों के बीच दाम्पत्य रिश्तों में तनाव, टकराहट, असामंजस्य की स्थिति है तो परिवार के समस्त सदस्य उसके शिकार होते हैं। परिवार की प्रगति न होकर हास होता है। परिवार टूटन, विघटन तथा बिखराव की तरफ बढ़ता है। संतान दर–दर की ठोकरें खाने लगती है। संतान में सही संस्कारों का बीजारोपण नहीं हो पाता। एक दिन परिवार बीच चौराहे पर आने की स्थिति में आ जाता है। अतः पारिवारिक संबंधों की रीढ़ है– पति–पत्नी यानि माता–पिता के बीच आपस के रिश्ते। यदि इन दोनों के बीच संबंध मधुर हैं तो परिवार की प्रगति दिन दुगुनी तथा रात चौगुनी बढ़ जाती है।

जिस प्रकार आकाष के नीचे सब तरह के जीव जंतु, वनस्पति तथा मानव तथा मानवेत्तर प्राणी अपना विकास करते हैं उसी प्रकार माता–पिता के निर्देषन में संतान अपना भविष्य तलाशती है। इन दोनों के बीच सहयोग करना, एक दूसरे की भावना की कदर करना, मिलकर समस्या का निदान खोजना आवश्यक हैं। ''सहयोग जीवन का तत्व है, विरोध जीवन का दोष, इसलिए दोष के ही विरोध को जीवन में स्थान है। स्त्री –पुरुष एक–दूसरे के दोषों का विरोध और गुणों का सम्मिलन करते हुए पूर्ण दषा को पहुँचे यही सृष्टि रचयिता को अभीष्ट है।''[57] आपसी सहयोग तथा सामंजस्य परिवार को एक रथ की तरह आगे ये दोनों पहिये धकेलते हैं, खींचते हैं।

परिवार में माता–पिता परिवार रूपी गाड़ी के दो पहिये हैं। इन दोनों से परिवार आगे गति पाता है। दोनों ही एक दूसरे के पूरक हैं, एक सिक्के के दो पहलू है। यह कह सकते हैं।

यदि इतिहास, पुराणों एवं धार्मिक ग्रंथों की बात करे तो माता–पिता अर्द्धनारीष्वर की तरह है। आपस में माता को सहचारिणी, सहधर्मिणी के समान दर्जा समाज में मिलता है, ग्रंथों में देवीतुल्य बताया हैं माता को। ऋणों में पितृऋण, मातृऋण भी संतान के लिए होते हैं। इस प्रकार माता–पिता की जिम्मेदारी बढ़ जाती है कि वे प्रेम,

स्नेहपूर्वक रहे ताकि संतान उनको अपना आदर्श मानकर अपना विकास करें। कमलेश्वर के उपन्यासों में इस तरह की भावाभिव्यक्तियों, संबंधों का पुंज है। कमलेश्वर गंभीर समाज चेता उपन्यासकार हैं। कमलेश्वर भी समझते हैं कि माता–पिता परिवार रूपी गाड़ी के पहिए हैं, दोनो पूरक हैं–वे 'वही बात' में कहते हैं– ''अधूरे आदमी को औरत पूरा करती है, अधूरी औरत को आदमी पूरा करता है।''[58] सफल दाम्पत्य संबंधों में प्रेम,विश्वास जरूरी है। इसी उपन्यास में आगे कहा हैं–''औरत और आदमी में सही प्यार हो तो आदमी घर का रास्ता कभी नहीं भूलता।''[59]

पति–पत्नी या हमारे लिए माता–पिता के संबंध परिवार के लिए बहुत बड़ी शक्ति होती है। किसी भी पुरुष की सफलता तथा असफलता के पीछे स्त्री का बहुत बड़ा योगदान होता है। यही कथन महिला की प्रगति के लिए लागू होता है। 'आगामी अतीत' उपन्यास का पात्र चंद्रमोहनसेन कमल' बोस को कहते हैं–''जिस दुनिया में तुम कदम रख रहे हो जिस दुनिया को तुम्हें जीतना है उसमें पत्नी एक बड़ा आधार और शक्ति है।''[60] माता–पिता के सुमधुर संबंधों के लिए पवित्रता तथा सुरक्षा का भाव तो जरूर होना चाहिए। ''पत्नी जहाँ पति की सुरक्षा में रहती है। वहीं पति भी पत्नी के कंधे पर सिर रख अपना दुखड़ा रो सकता है।''[61]

स्त्री अपने पति की हर संभव सेवा, सम्मान, आदर हेतु सर्वस्व न्योछावर करने को तत्पर रहती है। ''वह अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने में सदैव वह आगे रही है।[62] ''इसी त्याग की भावना के मामले में पुरुष भी कभी पीछे नहीं रहता वह भी पत्नी की खुषियों के लिए अपना सब कुछ न्यौछावर करने में पीछे नही रहता।''[63]

आधुनिक युग को यदि यांत्रिक युग कहे तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। इस युग में यानि आजादी के बाद हमारे समाज के मूल्यों में भी परिवर्तन आया है। इस परिवर्तन से माता–पिता यानी स्त्री पुरुष, पति–पत्नी के रिश्ते भले कैसे अछूते रहते। इस रिश्ते, संबंध पर भी

जबरदस्त विपरीत असर पड़ा है। आधुनिक कालीन न तो पिता सहनशीलता रखते न ही माताएं जयशंकर प्रसाद की श्रद्धा की तरह विश्वास के सुमेरू पर्वत की तलहटी में यानी पुरुष के आगोष में अपनी सत्ता ढूँढ़ती। जनसंचार के माध्यम एवं विदेषी संस्कृति के प्रभाव से पति–पत्नी के रिश्तों में दरार आम बात होती जा रही है। माता–पिता के पवित्र रिश्ते अब परिवर्तन के दौर से गुजर रहे हैं। आज की नारी पति–पत्नी यानी किसी पुरुष की पत्नी के रिश्ते को मजबूरी नहीं मानती वह आजादी से जीना चाहती है। कमलेश्वर कृत 'डाक बंगला' उपन्यास की नायिका 'इरा' इसी बात को उठाती है–''पत्नी के रूप में वे वही ज्यादा सफल होती है जिन्होंने अपने मन को मार लिया है, यानि जो जिंदगी भोगने आती है। इस भोग में विलास नहीं पीड़ा से भरी एक मजबूरी है।''[64]

माता–पिता के पावन रिश्ते में तीसरे आदमी की दखलंदाजी बढ़ती जा रही है। व्यक्ति इन रिश्तों से पलायन ही ओर आने को अभिशप्त है। कमलेश्वर कृत उपन्यास 'तीसरा आदमी' का नरेष जीवन से पलायन करता है–''मेरे सामने और कोई रास्ता नहीं था, सिवा इसके कि मैं अपना तबादला करके किसी छोटे स्टेषन पर चला जाऊँ। आर्थिक और मानसिक दोनों रूपों में तभी कुछ शांति मिल सकती थी क्योंकि अब तो सुमंत और चित्रा दोनों मिलकर अहसान चढ़ा रहे थे।[65] 'काली आँधी' उपन्यास की नायिका मालती इस रिश्ते की पावनता को न समझकर केवल इस रिश्ते को अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए एक साधन रूप में मानती है। वह जग्गी बाबू से कहती है कि–''रिश्ते कामों को आसान करने के लिए होते हैं। .. बेडियाँ डालने के लिए नहीं। सही बात यह है कि आप अभी तक मेरी इस सेवा और त्याग की जिंदगी पब्लिक सर्विस की जिंदगी से अपने को जोड़ ही नहीं पाए हैं।''[66] उपन्यास की नायिका मालती का यह कथन का उत्तर यह भी है कि जग्गी नहीं जोड़ पाए या मालती जग्गी से जुड़ पायी। कुल मिलाकर आज माता–पिता के इन रिश्तों की

पावनता खतरे में जिसके शिकार उनके बच्चे हो रहे हैं। कुसंस्कारित बच्चे समाज को किस दिषा में लेकर जाएँगे अंदाजा लगाने से रूह काँप जाती है।

धन दौलत, महत्वाकांक्षा, अविश्वास, व्यस्तता, अति उत्साह, असहनशीलता, क्रोध, व्यापार आदि ऐसे कारक हैं जो माता–पिता की पवित्र जिंदगी के बीच खलनायक की तरह आते हैं और प्यारी बगियों को उजाड़ जाते हैं। जीवन मूल्य विघटित हो रहे हैं। रिश्ते टूट रहे हैं। परिवार बिखर गया है। मुखिया का नियंत्रण समाप्त है। संतानों की मनमर्जी अपने चरम पर है जिनके आहट तथा अभिव्यक्ति को कमलेश्वर के उपन्यास चीख–चीखकर कहते हैं।

4. पिता–माता तथा पुत्र–पुत्री संबंध

प्राचीन काल से ही माता–पिता तथा संतान के बीच बहुत पवित्र तथा सम्मानीय, आदरणीय, पूजनीय संबंध रहा है। माता–पिता को संतान धरती पर भगवान का दूत समझा जाता रहा है। सवेरे उठते ही माता–पिता के चरणस्पर्ष करना प्रत्येक आदेशों को पूर्णतया मानना, पालन करना अपना नैतिक कर्तव्य संतान द्वारा समझा जाता रहा है। प्रत्येक संतान यानी पुत्र–पुत्री अपने माता–पिता को अपना आदर्श, निर्देषक यानी सब कुछ मानते हैं। जिस प्रकार पुत्र–पुत्री माता–पिता को भगवान तक दर्जा देते है तो माँ–बाप की भी बड़ी जिम्मेदारी होती है अपनी संतान के प्रति। संतान का सही लालन–पालन, शारीरिक, मानसिक देखभाल षिक्षा–दीक्षा का उचित ध्यान रखना तथा भविष्य बनाने में सक्रिय भागीदारी होती है। किसी भी माँ–बाप का अपनी संतान के प्रति विशेष लगाव रहता है। हिंदू परिवारों में तो संतान के लिए ऋण की व्यवस्था है। माँ– बाप द्वारा संतान के प्रति कर्त्तव्य, जिम्मेदारी है तो संतान को भी ऋणमुक्त तभी किया जाएगा जब वह माँ–बाप की भावनाएँ, विचारों का आदर करें। पूर्णतया सेवा करें तथा उनको मनाना, वाचा, कर्मणा दुख न पहुँचाएँ।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में पुत्र की प्राप्ति सबसे बड़ा कार्य समझा जाता है। प्रत्येक माता–पिता की हार्दिक इच्छा होती है कि उसकी प्रथम संतान पुत्र के रूप में पैदा हो। परंतु कुछ वर्षो से इन संबंधों में बहुत बदलाव भी आया है। कमलेश्वर के उपन्यासों में इस विषय की बहुत संजिंदगी से उपस्थिति दर्ज है। इन संबंधों के चलते कभी–कभी पिता अपनी विधुर अवस्था में दूसरी शादी नहीं करता क्योंकि उसकी संतान की क्या स्थिति होगी, वे जानते हैं कि सौतेली माँ का व्यवहार पूर्व पत्नी के बच्चों के साथ अच्छा नहीं रहता। इस तरह का त्याग एक पिता अपने बच्चों के लिए करता है। यह विशेषता विश्व में केवल भारतीय संस्कृति की रही है।

'रेगिस्तान' उपन्यास के पात्र विश्वनाथ के पिताजी अपनी दूसरी शादी इसलिए नहीं करते कि विश्वनाथ का भविष्य, सार संभाल खतरे में पड़ जाएगी 'सौतेली माँ के आते ही बाप भी सौतेला हो जाता हैं – मैं अपनी शादी नहीं, अब अपने बिस्सू की ही शादी करूँगा।''[67] इधर पुत्र की भी बड़ी जिम्मेदारी होती है अपने माता–पिता के प्रति पूर्ण ध्यान रखे, आस्था रखे, उनके दुःख, कष्टों में साझीदार बने। 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' उपन्यास का पात्र शिवराज अपने पिता की बीमारी का समाचार सुनकर तुरंत गांव को चल पड़ता है।''[68] एक पुत्र को और वह भी सजग, सचेत को अपने घर की सभी परिस्थितियों का पता रहता है। वह अपनी आर्थिक स्थिति से परेशान रहता है तथा अपने माँ–बाप के कंधों के बोझ का हल्का करने की निरंतर सोचता है। इसी तरह का उदाहरण 'समुद्र में खोया हुआ आदमी' उपन्यास में आया है। पुत्र अपने माँ–बाप की स्थितियों से वाकीफ है तथा सोचता है कि इनका मैं सहायक बनू, साझीदार बनकर कार्य करूँ ''उसे हमेशा अपने बाबूजी की मायूसी और बेबसी सताती रहती। वह घर की तरफ देखता तो बरबस मन भर आता। उसे पता था कि माँ और बाबूजी उसे अपना पेट–काट काटकर पढ़ा रहे थे। वह भी इसी

कोशिश में रहता कि उसके कारण घर में कोई परेशानी न हो जाए।''[69]

माता–पिता तथा संतान के संबंधों में पिता न केवल अपने पुत्र का ध्यान रखता बल्कि हमारे समाज में पुत्री का भी उससे बढ़कर ध्यान रखा जाता है। कमलेश्वर कहते हैं कि–पिता पुत्री का भी उतना ही ध्यान रखते है जितना पुत्र का।''[70] माँ–बाप कभी नहीं चाहते कि उनकी बेटी नौकरी न करे, अवष्य करे। हर क्षेत्र में कार्य करे परंतु राजनीति की कुत्सित दुनिया से गुरेज रखे। माता–पिता हर संभव यह कोशिश करते हैं और विशेषकर बेटी के लिए कि वह किसी प्रकार की कुगति गलत रास्ते पर न चले। बूराइयों से दूर रहे। छल–प्रपंच से दूर रहे। 'काली आँधी' में मालती के प्रति राजनीति की गंदगी के बारे में कहते हैं–''मैं नहीं चाहता कि मेरी बच्ची आपकी जालिम पालिटिक्स की शिकार हो जाए। मैं अपनी बच्ची को आपकी इस गलीच दुनिया से दूर रखना चाहता हूँ।[71]

इधर पुत्री भी माता–पिता का पूरा ध्यान रखती हैं। वे हर संभव माँ–बाप की खुशी के कार्य करते हैं। किसी तरह की समस्या, आपत्ति, आपदा आने पर कोमल हृदय माँ–बाप को नहीं बताती क्योंकि उनकी भावनाओं को ढेस पहुँचेगी। इस तरह की आपसी सामंजस्य की भावनाओं से ही परिवार चलते है, रिश्ते चलते हैं, संबंध मधुर बनते हैं। समुद्र में खोया हुआ आदमी उपन्यास में पुत्री अपने माता–पिता का कितना ध्यान रखती है। इसकी नजीर–''परमात्मा के लिए यह खबर मत देना–नही तो बाबूजी और अम्मा का हार्ट फेल हो जाएगा। वे जिंदा नहीं हर पाऐंगे।[72]

हमारी सामाजिक संरचना, संगठन बहुत मजबूर हैं। यहाँ रिश्तों का ध्यान रखा जाता है। परिवार का मुखिया, कमाने वाला यदि पिता है तो, केवल उसी का सम्मान, आदर हो यह जरूरी है परंतु यह नहीं की गृहलक्ष्मी माता को नजर अंदाज कर दिया जाए। उसके साथ दोयमदर्जे का व्यवहार हो या गौण नजर से देखा जाए। माँ के साथ

अपनी संतान के बहुत प्रगाढ़ रिश्ते होते हैं। माँ ही तो अपनी संतान को सामाजिकता सिखाती है। बच्चे की प्रथम षिक्षक उसकी माँ होती है जो उसे रिश्ते, कर्त्तव्यों का बोध करवाती है। माँ के साथ संतान मुक्त महसूस करती है। माता कभी अपने बच्चों को गलत राह पर नहीं ले जाती। वह बच्चों की भलाई के लिए हर संभव अच्छा करने की कोशिश करती है। घर में पिता न हो तो ऐसे परिवार की माता की जिम्मेदारी और बढ़ जाती है। वह माता अपनी संतान की उन्नति के लिए घर से बाहर निकलकर समाज, स्कूल से भी रूबरू होती है। समाज से टकराती है। परंपराओं से टकराती है। हार नहीं मानती क्योंकि उसे अपनी संतान के लिए रास्ता बनाना है। कमलेश्वर के उपन्यास 'आगामी अतीत' में एक ऐसी माँ का वर्णन है जो अपने पुत्र की उन्नति के लिए हर संभव कोशिश करती है–''भागदौड़ करके माँ उसकी डॉक्टरी की पढ़ाई के लिए दोनों का इंतजाम करवा आई थी। वह वजीफा अगर माँ ने न बँधवाया होता तो वे कहाँ से डॉक्टरी पढ़ती? कमल बोस को तो पता भी नहीं चला था कि यह सब कैसे मुमकिन हुआ था। श्रृंखला में इधर पुत्र भी अपनी माता के प्रति पूर्ण ध्यान रखते है। वे अपने किसी भी व्यवहार से अपने को ठेस नहीं पहुँचाना चाहते। रोजगार शुदा बेटे से माँ के पूछने से भी कितने रूपये मिलते हैं तो पुत्र यदि यह कहें कि आपके हाथ में सारे रूपये यानी तनख्वाह रख दूँगा देख लेना तो माता को बहुत अच्छा महसूस होता है। जबकि हम जानते हैं कि उन रुपयों को माँ खर्च नहीं करेगी। जरूरत होगी तो अपनी संतान से सामान लाने को कहेगी परंतु एक भावना होती है कि मेरी संतान मुझे तनख्वाह दे वापस तुरंत माँ संतान को लौटा दे। 'समुद्र में खोया हुआ आदमी' उपन्यास का पुत्र माता द्वारा पूछे सवाल कि–कितनी तनख्वाह मिलती है का उत्तर देता है–''अम्मा तनख्वाह की मत पूछो ...खाना, पीना, कपड़ा, रूपड़ा, रहना–वहना सब फ्री है। तनख्वाह तो पूरी तुम्हारे लिए है।''[74] इस तरह के सवाल–जवाब से मन प्रसन्न हो जाता है एक दूसरे का।

साथ ही हमारे संबंधों की सबलता, दृढता, मजबूती का राज भी यही हैं।

इन संबंधों में केवल पुत्र ही नहीं पुत्री की भी प्रथम शिक्षिका माता होती है। जिंदगी का प्रथम ककहरा माँ ही बेटी को सिखाती है। समाज की संरचना, रीति, नीति, परंपराएँ आदि के बारे में माता अपनी बेटी को पग–पग पर टोकती हैं, कहती है, सही रास्ते पर चलाती है। एक माँ हर दिन स्कूल जाती या घर से बाहर जाती लड़की को यही कहती हैं–''सीधी घर आना .. ढाई बजे छुट्टी होती है, साढे तीन बजे तक घर पहुँचों। रोज–रोज मैं नही सुनूँगी कि बस नहीं मिली।[75] इस कथन में कई तरह के भाव मौजूद है, पर एक माँ अपनी बेटी की सदैव भलाई चाहती है। बेटी के रहन–सहन, खान–पान, चाल–चलन पर भी निरंतर गौर करती है। माँ समझती हैं–ज्यादा फैशन करने की जरूरत नहीं है। सीधी चोटी करो। .... और साड़ी का पल्ला सीधा पड़े ..... समझी।''[76]

इन रिश्तों में आज कुछ परिवर्तन भी आया है। कुछ बिगड़ाव भी हुआ है। कई घरों में माँ अपनी पुत्री के घर में नौकरानी की तरह के जीवन जीने पर अभिशप्त हैं। इसी उपन्यास में तारा अपने भाई की मृत्यु के बाद अपनी माँ रम्मी को अपने घर ले आती है केवल इस भाव से कि उसे एक अपनी पुत्री की देखभाल के लिए नौकरानी तो चाहिए ही थी। इसी तरह की गतिविधियाँ पुत्र द्वारा अपने माता–पिता के साथ की जा रही हैं।

परिवर्तन संसार का नियम है, तो माता–पिता और पुत्र–पुत्री के रिश्तों में भी बदलाव कैसे नहीं आए। जब सामाजिक ढाँचा ही परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है तो संबंध कैसे अछूते रहते। इनकी सुगबुगाहट कमलेश्वर के उपन्यासों में दिखायी देती है। कमलेश्वर के उपन्यास स्वातंत्र्योत्तर भारतीय रीति–नीति, राजनीति के ज्वलंत दस्तावेज हैं।

5. भाई–बहिन संबंध

माता–पिता का अपनी संतान के साथ संबंध हमारी सामाजिक संरचना का पावन रिश्ता है। इसी रिश्ते की शृंखला में दूसरा जो बहुत महत्वपूर्ण रिश्ता, संबंध, लगाव यदि समाज, परिवार में है तो वह है भाई का बहिन तथा बहिन का अपने भाई के साथ अटूट सामाजिक, भावात्मक रिश्ता। यह एक ऐसा रिश्ता है जिसमें दोनों यानी भाई–बहिन अपने भविष्य संबंधी बातें आदान–प्रदान करते हैं। दुनिया का यही रिश्ता निःस्वार्थ है। बिना किसी छल–प्रपंच के यह रिश्ता होता है। हमारी सामाजिक संरचना, पारिवारिक व्यवस्था इस तरह की बनी है कि व्रत, तीज, त्योहारों के अवसरों पर इन दोनों का मिलन जन्म भल चलता रहता है। भैया दूज, रक्षा बंधन के ऐसे अवसर हैं जब हमें इन रिश्तों की प्रबल इच्छा होती है। कई बार परिवार के मुखिया पिता के न रहने पर भाई उस परिवार के मुखिया की भूमिका अदा करता है। उस रिश्ते को महसूस नहीं होने देता। इस रिश्ते में दोनो की अहम जिम्मेदारी होती है। दोनों के कर्त्तव्य हैं जिनका निर्वाह करते हुए समाज के पथ पर आगे बढ़ते हैं। बहन के लिए भाई की कई तरह की भूमिकाएँ होती है। वह पितातुल्य होता है। वह पथ प्रदर्षन होता है। वह आदर्श होता है तो बहन भी अपने भाई के मार्ग की कठिनाई को आसान करती है। वह भाई को भावात्मक संबल देती है।

बहिन अपने भाई की भलाई के लिए दुनिया के सारे जतन करती है। वह स्वयं सच्चाई, ईमानदारी की राह पर चलती है तो ने अपने भाई को भी उसी तरह प्रेरित करती है। रेगिस्तान उपन्यास में कमलेश्वर ने विश्वनाथ की चचेरी बहिन को विश्वनाथ की सहायता करते हुए दिखाया हैं–''विश्वनाथ की चचेरी बहिन अपने परिवार के विरूद्ध जाकर विश्वनाथ की भलाई की बात करती है।''[77] हमारे समाज में चचेरे भाई तथा बहिन को स्वयं का सहोदर, सहोदरा जैसा दर्जा दिया जाता है। बहिन भाई को हर संभव प्रेरित करती है।

आत्मीक संबल देती है। इसी उपन्यास में बहिन भाई की भलाई मंगल–कामना के लिए हर संभव कोशिश करती है, बहिन कैसे भाई को प्रोत्साहित करती है, एक नजीर–''तुम काहे को दर–दर भटक रहे हो ? काहे को अपनी जिंदगी खराब कर रहे हो ? इतना पढ़ा लिखा है तुमने ... आराम उठाओं जिंदगी में ...।''[78]

भाई के अभाव में, खो जाने पर बहिन की क्या दषा होती है। बहन ही जानती है। वह अपना सब कुछ खो जाने की बात सोचती है। बेसहारा होती नजर आती है। पागलपन की स्थिति में आ जाती है। आधारहीन मानती है। उस मानसिक आघात को बहिन बहुत ही कठोर दिल होकर सहन करती है। उसके दिल में वह टीस बराबर बनी रहती है। 'समुद्र में खोया हुआ आदमी' उपन्यास का पात्र यानी भाई वीरेन की असामयिक मृत्यु से उसकी बहिनें पागल सी हो जाती हैं और कह उठती हैं–''पहले मुझे तुम कहीं भेज दो, तब यह सब करना ....समीरा बोली थी–हम लोगों की जिंदगियाँ सिर्फ खिलावड़ के लिए रह गई हैं। जो खो गया है वह भी खिलवाड़ बन गया है। मुझसे यह सब बर्दाष्त नहीं होता।''[79] यह सच है कि भाई की मृत्यु का आघात सबसे अधिक बहिन को लगता है। तत्पष्चात् माँ तथा पत्नी का नंबर आता है। दुनिया के इस पवित्र रिश्ते की यादें व्रत, त्यौहारों पर बहुत आती है। भाई–बहिन के इन संबंधों की पवित्रता कहते नहीं बल्कि व्यवहार में देखती बनती है। एक बहिन अपने भाई की सुख–समृद्धि भी सदैव मंगल कामनाओं की कल्पना करती है। भाई की सुख–समृद्धि के लिए वह अपने पति से भी उलझ जाती है। भाई समय पर घर नहीं पहुँचे वह बहुत व्याकुल बैचेन हो उठती है। ''शाम को समीरा फिर–बैठी परछाइयाँ देखती रही। विरेन नहीं आया था।''[80] भाई के अभाव में बहिन उसके बच्चों के पालन–पोषण तक की जिम्मेदारी उठाने को तैयार रहती है। वह अपना सौभाग्य मानती है। न केवल बच्चों बल्कि अपनी भाषा तक को अपने साथ ले जाती हैं और उनके उज्जवल भविष्य के लिए हर संभव प्रयास करती है। 'डाक

बंगला' उपन्यास में इस तरह की बातें सामने आती हैं–''उसकी बहन कुछ दिनों बाद अपने पति के साथ दोनों बच्चों को लेकर षिलांग चली गई थी।''[81] भाई की मृत्यु के पश्चात् अपनी भाभी की हर संभव सहायता करना तथा उसकी सम्पति की सुरक्षा करना अपना कर्त्तव्य समझती है। भाई की सम्पति में से वे किसी प्रकार की हेरा फेरी करना अनुचित समझती हैं।[82]

इस प्रकार भाई अपनी बहिन की सुरक्षा, पढ़ाई, भविष्य निर्धारण से लेकर वर खोजने, अच्छे सुसंस्कारित परिवार में बहिन का रिश्ता करना अपना फर्ज मानता है तो बहिन भाई के लिए स्नेह, प्रेरणा तथा एक योग्य मार्गदर्शक की भूमिका में साथ रहकर अपने सामाजिक दायित्वों, कर्त्तव्यों का निर्वहन करती है। संसार का यह पवित्र रिश्ता भारतीय सामाजिक संरचना का दृढ़ आधार हैं।

6. अन्य संबंध

सामाजिक, पारिवारिक संबंधों की मूलाधारों का वर्णन, विश्लेषण किया। इन संबंधों को पूर्व विवेचित हैं के अलावा भी पारिवारिक संबंध शेष रह जाते हैं। इन संबंधों की मजबूती तथा इनका सम्मान, आदर करना परिवार के प्रत्येक सदस्य की जिम्मेदारी रहती है। प्रत्येक सदस्य का मर्यादित व्यवहार परिवार को स्वर्ग बना देता है। इन संबंधों में दादा–दादी, चाचा–चाची, सास, बहू, ताऊ–ताई, भतीजे–भतीजी, देवर–भाभी, देवरानी–जेठानी के संबंध भी बहुत प्रगाढ़ हो तो परिवार में कई पीढ़ियाँ एक साथ संयुक्त परिवार को मजबूती देते हैं।

संयुक्त परिवार में 'दादी' की भूमिका भी कम महत्वपूर्ण नहीं । वह परिवार के लिए सम्मानीय, आदरणीय, पूजनीय समझी जाती है। परिवार के बच्चे तथा बहुएँ उससे पूछकर व्रत, त्योहार आदि में सामाजिक परंपराओं का निर्वहन करती हैं। दादा–दादी के सामने परिवार के किसी सदस्य द्वारा धृष्टता करने की हिम्मत नहीं होती।

कमलेश्वर स्वयं संयुक्त परिवार के सदस्य रहे और ऐसे परिवार को गहराई से देखा। उनके उपन्यास सुबह–दोपहर–शाम का पात्र ''जसवंत के पिता और माँ की हिम्मत नहीं थी कि वे बड़ी दादी के सामने बाल जाएँ।''[83] दादा–दादी की बात का असर परिवार में देखने को मिलता रहा है।

दादा–दादी के साथ परिवार के अन्य सदस्यों के साथ संबंधों के अलावा सास–बहू का रिश्ता बहुत नाजुक रिश्ता है। यह रिश्ता पीढ़ी–दर–पीढ़ी बदलता रहा है। जो आज बहू है कल वह सास बनती है। प्रत्येक सास अपनी बहू को परिवार की मान–मर्यादाएँ, इज्जत, काम कायदों को सिखाती हैं। दोनों की नैतिक जिम्मेदारी है कि मिलकर रहे। सास अपने अनुभव बहु से बांटती है। बहू उनको समझती है तथा आगे के लिए परिवार के साथ अपने को सामंजस्य बैठाती है। सुबह–दोपहर–शाम उपन्यास में–''शांता ने सास जी के पैर छूते हुए कहा–अम्मा जी वचन देती हूँ–इस कुल में जो हुआ है, वही हमेशा करूँगी।''[84] दोनों ही परिवार के प्रगाढ़ संबंधों के लिए सेतु का कार्य करती है।

समाज में देवर–भाभी का रिश्ता बहुत ही श्रद्धा, विश्वास तथा मित्रवत् होता है। यह रिश्ता ऐसा है जो कभी भाभी को देवर अपनी माँ की तरह देखता है तो कभी दोस्त की तरह तथा कभी मार्गदर्शक की तरह। एक देवर अपनी भाभी को ही अपने वैवाहिक जीवन से पूर्व गोपनीय बातें बताता हैं। देवर के लिए उसकी बहिन के बाद सबसे प्रामाणिक मार्गदर्शक भाभी नजर आती है। भारतीय संस्कृति में भाभी मातृ तुल्य समझी जाती है। बड़ी भाभी तो परिवार में माँ के बाद महिलाओं में दूसरा स्थान पाती है। 'सुबह–दोपहर–शाम' उपन्यास में इस तरह का प्रसंग है जब भाभी के मातृतुल्य माना हैं–''पता नहीं अम्मा से कब मिल पाऊँगा। खैर ..कोई बात नहीं ..भाभी को देख लिया, समझो अम्मा को देख लिया।''[85] इसी तरह बड़ी भाभी अपने देवर को अपने पुत्र तुल्य समझती है। वह उसे लाला तक का

सम्बोधन करती है और कहती हैं—मैं औरत नहीं.. तुम्हारी भाभी, माँ हूँ लालाजी।''[86] इसी प्रकार ननद भाभी का रिश्ता भी इसी तरह का होता है। घर की भाभी ननद के लिए मार्गदर्शिका, शिक्षिका तथा माँ की तरह होती है।

इन्हीं रिश्तों की कड़ी में देवरानी—जेठानी का रिश्ता भी दोस्त जैसा तथा सास समान होता है। जेठानी अपनी देवरानी के लिए उसकी सच्ची सहेली भी है, तो सासवत् भी होती है। देवरानी की दाम्पत्य जीवन की उलझनों को सुलझाने का कार्य जेठानी से बेहतर कोई नहीं कर सकता। वह अपनी देवरानी के लिए बड़ी बहिन की तरह भी होती है। 'सुबह—दोपहर—शाम' उपन्यास में एक प्रसंग ऐसा ही है—''जेठानी जहाँ देवरानी की बड़ी बहन के सम है वहीं वह समय—समय पर सास का दायित्व भी पूर्ण करती है। वह आने वाली नई बहू को सारी कुल परंपरा का पाठ पढ़ाकर उसे उसी गौरवपूर्ण, कुलीन एवं मधुर परिवार की भावी पीढ़ी का निर्माण भी दिखाती है।''[87]

संयुक्त परिवारों में जहाँ उपर्युक्त संबंध परस्पर जुड़े रहते हैं। वहाँ पर चाचा, ताऊ, भतीजे, चचेरी बहन, भाई आदि के साथ भी परस्पर जुड़कर कार्य करना होता है। यदि उनके साथ मधुर संबंध नहीं बनता तो संयुक्त परिवार टूट, बिखर जाता है। सुदृढ़ता के लिए इन संबंधों में भी आपसी प्रगाढ़ता, अपनत्व का भाव मौजूद होना चाहिए। कभी—कभी ऐसे ही उदाहरण सामने आते हैं कि एक सदस्य दूसरे के हक को छिनता है, भावनाओं के साथ खिलावड़ करता है। तब संयुक्त परिवार प्रथा का कोई अर्थ नहीं रहता। ऐसी स्थिति में संयुक्त परिवार टूट कर बिखर जाता है। इस तरह के संबंधों का व्यवहार रूप भारतीय संस्कृति की ही देन है। विश्व के किसी देश में इतने बड़े तथा लंबे संयुक्त परिवार नहीं होते। इतने रिश्ते होंगे पर सब अलग—थलग। एक छत के नीचे इतने संबंध परस्पर जुड़े रहे यह हमारी सांस्कृतिक गौरव गाथा है। जिसका वर्णन, विश्लेषण कमलेश्वर के उपन्यासों में चित्रित हुआ है।

समाज में पुरुष की स्थिति

'पुरुष' शब्द स्त्री का विलोमार्थी है तथा वह सामाजिक प्राणी जिससे सृष्टि की संरचना होती है। सामाजिक, पारिवारिक व्यवस्था के लिए पुरुष का होना आवश्यक ही नहीं अति आवश्यक है। बिना पुरुष और स्त्री के समाज नहीं बनता। समाज के प्रथम आधार स्तम्भ दोनों हैं, जिसमें पुरुष का स्थान परिवार में महत्वपूर्ण होता है। पुरुष अपने सहनशील, कोमल, मृदु व्यवहार से परिवार का संचालन करता है। अहंकार तजना तथा सहनशीलता धारण करना एक परिवार के लिए आवश्यक होता है। क्योंकि पुरुष न केवल घर के प्रत्येक सदस्य को जोड़ता है बल्कि घर से बाहर समाज के संबंधों का नियंता भी वही होता है। समाज की सभी अच्छी बातें धारण करें, बुरी बातें तजे यह उससे आशा की जाती है।

समाज, परिवार को गतिशीलता प्रदान करने के लिए पुरुष के साथ नारी, स्त्री को होना भी आवश्यक होता है। बिना स्त्री के पुरुष आधार समझा जाता है। उसका आधा अंग हिस्सा 'स्त्री' होती है। इसीलिए उसे अर्धांगिनी कहा गया है। हमारे पुराणों, धार्मिक ग्रंथों में अर्द्धनारीष्वर की भी कल्पना की गयी हैं। यानी पुरुष या स्त्री दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। एक अभाव में दूसरा अधूरा होगा। नारी का संसर्ग पुरुष को देवत्व की ओर ले जाता है। मुंषी प्रेमचन्द 'गोदान' उपन्यास में कहते हैं कि–"पुरुष में नारी के गुण आ जाते हैं तो वह महात्मा बन जाता है।"[88] लेकिन पुरुष भी प्रत्येक स्त्री की ओर आकृष्ट नहीं होता। वह उसी स्त्री की ओर आकृष्ट होता है जो सचमुच पूर्ण रूप से स्त्री हो। प्रेमचंद इस बात को भी गोदान में लिखते हैं –"पुरुष आकर्षित होता है स्त्री की ओर जो सर्वांग में स्त्री हो।"[89] इसलिए दोनों पूरक हैं। लेकिन यह पूरकता पवित्रता से जुड़ी है, मजबूरी या आकर्षण से नहीं।

कमलेश्वर स्वातंत्र्योत्तर ऐसे कथाकार, उपन्यासकार हैं जिन्होंने साहित्य को मनोरंजन, कथा कहानियों के ढाँचे से निकालकर समाज

सत्य, सामाजिक सरोकार, युग बोध, युग चेतना से जोड़कर अनुभूति अभिव्यक्ति की सच्चाई से जोड़ा। पुरुष को स्त्री का दोस्त, मित्र, सखा, हमाराही, हमसफर बनाना चाहते हैं कमलेश्वर। वे पुरातन मानसिकता पर बेरहमी से प्रहार करते हैं। पुरुष घर का मालिक होता है तथा घर में उसे महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होता है। कमलेश्वर बिना पुरुष की स्त्री को समाज में स्थान नहीं देते। वे प्रसाद की तरह की श्रद्धा नहीं गढ़ते तो पुरातन व्यवस्था के अनुसार देवी रूप भी नहीं देते तो मध्यकालीन बंदिनी भी नहीं बनाना चाहते। कमलेश्वर स्त्री को स्त्री ही मानते हैं। लेकिन पुरुष का महत्व कम नहीं करते। 'डाक बंगला' की इरा के माध्यम से कहते हैं–''अच्छी से अच्छी और बुरी से बुरी जिंदगी शान से चल सकती है, पर बगैर आदमी के वह न अच्छी जिंदगी जी सकती है और न वह बूरी।''[90] नारी सदैव पुरुष की सहधर्मिणी, सहगामिनी, अनुगामिनी बनी रहती है। वह पुरुष मैं सदैव देवत्व खोजती है। वह शंकर की तरह पुरुष को देखती है। 'डाक बंगला' उपन्यास में 'इरा' बतरा के गुणों की प्रशंसा में कहती हैं– ''बतरा की सहन शक्ति और अपने को छिपाकर रखने की ताकत को मैं मान गई थी।... यह कैसा आदमी है जिसे छोड़कर शीला चली थी। और वह शंकर की तरह विष पीकर खामोष था।[91]

पुरुष सदैव अपने से, समाज से, परिवार से जूझता है, संघर्ष करता है। यह उसके संघर्षशील व्यक्तित्व का परिचायक है। हार की जीत में तब्दील करने का माद्दा पुरुष में होता है। वह परिवेश की सच्चाई, वर्तमान को स्वीकार करने का साहस भी रखता है। कमलेश्वर रोता, बिलखता, टूटा, हारा पुरुष नहीं बल्कि संघर्षशील, हार न मानने वाला पुरुष चाहता है। वह वर्तमान को स्वीकार करने की बात कहता है। 'काली आँधी' उपन्यास इस बात का गवाह हैं–''हम जब जब मिले...पछताते ही रहे। बेहतर है कि हमारे सामने जो कुछ है उसे साहस से स्वीकार करें। जो है वह है, जो नहीं है वह नहीं है।''[92]

समाज में पुरुष का स्थान सर्वोपरि तथा विशिष्ट है। कमलेश्वर जिस युग तथा सिज समाज की बात कर रहे हैं उस युग तथा समाज में पुरुष का महत्व कम नहीं हुआ। पुरुष के प्रति समाज की सोच बदली है। स्थान अब भी सर्वोपरि ही है। अब वर्तमान और अद्यतन प्रबुद्ध समाज तथा महिला वर्ग में पुरुष के प्रति सोच बदल गया। पुरुष अपनी पत्नी के पास न रहकर भी पास रहने की बात करता है तथा पास रहकर भी अति व्यस्त जीवन शैली की वजह से दूर महसूस करता है, इस बात को कमलेश्वर ने बहुत खूबी के साथ पकड़ा है। सुबह–दोपहर–शाम उपन्यास में ऐसे व्यस्त कार्य में संलग्न जसवंत को दिखाया है–जसवंत अपनी पत्नी के साथ रहते हुए भी अपने को सदैव रेल में बैठा अनुभव करता हैं।''[93]

पुरुष का जीवन घर की चहारदीवारी के भीतर शुरू और खत्म नहीं होता। वह सामाजिक प्राणी है। परिवार का मुखिया है। ऐसा मुखिया जो एक समय तो अकेला कमाने वाला तथा परिवार संचालन करने वाला होता है। कभी–कभी जीवन में वह एक तरफ से अकेला पड़ जाता है। लेकिन यह एकांत उसको मानसिक दृष्टि से सबल, ताकतवर बनाता है। जिसका लाभ उसे आगामी जीवन में मिलता है। कमलेश्वर के 'वही बात' उपन्यास में नकुल की यही स्थिति बनती है एक बार। नकुल किसी परियोजना का चीफ है। वह अकेला है और महसूस करता है–''जिसे कोई बताने वाला नहीं होता, वह सब काम खुद ही सीख लेता हैं ...सीखना पड़ता है।[94]

समाज में पुरुष का वर्चस्व, अहं भाव ही आज के स्त्री विमर्ष को जन्म दिया है। पुरुष का अहंकार तथा स्त्री पर वर्चस्व की भावना उसे परिवेश, समाज से मिलती है। ऐसी अनेक कथा, कहानियाँ हैं जिसमें पुरुष का अहंकार परस्पर छलकता है। वह अहं भावना केवल अनपढ़, निरक्षर, कृषक श्रमिक वर्ग में ही नहीं अवसर पाकर वह पद प्रतिष्ठित लोगों में भी सामने आ जाती हैं। कमलेश्वर के उपन्यास 'सुबह–दोपहर–शाम' उपन्यास का पात्र जसवंत छोटे पद पर काम

करता है, परंतु उसका अहं भाव अवसर पाकर सामने आ जाता है। वह अपनी नौकरी पर गर्व करता है। जसवंत कहता है–''वैसे तो खैर पद्वी में रंजन बाबू हमसे ऊँचा है, लेकिन जब तक हम खन्ना काट के न दें, रेलगाड़ी अपनी जगह से हिल नहीं सकती।''[95]

स्त्री बहुत भावुक होती है लेकिन भावुकता स्त्रियों का ही आभूषण नहीं होता वह पुरुष का भी होता है। पुरुष दिखने तथा दिखाने के लिए कठोर होता है परंतु हृदय उसके अंदर भी है। वह भी सामाजिक संबंधों, रिश्तों को लेकर बहुत भावुक होता है। कभी भावुक पुरुष अपनी इस दुर्बलता की वजह से रिश्तों में धोखा भी खा जाता है। कमलेश्वर 'डाक बंगला' उपन्यास में कहते हैं – ''कोई स्त्री पुरुष को धोखा देती रहे परंतु वह भावनावष फिर भी उसे चाहता है। उसकी प्राप्ति की कामना उसके मन में सदैव दीप्त रहती है।[96] कमलेश्वर के 'काली आँधी' उपन्यास का पात्र 'जग्गी बाबू' जो मालती के पति हैं। बहुत भावुक आदमी है। जग्गी बाबू अपनी सोच, स्थान को बदलता नहीं। वह मालती से अलग होकर भी अलग नहीं है। उसका मन, दिल बाद तक मालती के लिए रोता है, चाहता है।'' जग्गी बाबू के भीतर एक ऐसा इंसान बैठा हुआ है जो अपने लिए नहीं, दूसरों के लिए रोता हैं – सच कहूँ तो मालती के लिए रोता है। मालती के लिए यह आदमी अपनी जिंदगी को एक जगह पकड़कर बैठ गया है–न जिंदगी के आगे बढ़ने देता है, न पीछे हटने देता है।''[97] रिश्तों के प्रेम, स्नेह, अपनत्व भावुकता की वजहें है और होनी चाहिए।

भावुकता पुरुषों का भी आभूषण हैं, परंतु आज की आधुनिक जीवन–षैली यांत्रिक युग, भागदौड़ भरी जिंदगी, मारकाट के युग में स्नेह, भावना, प्यार, अपनत्व, मधुरता, करूणा आदि मृतप्रायः हैं। आदमी, मनुष्य इस युग में वस्तु यंत्र बनकर रह गया है। इसी प्रकार स्त्री से भी स्नेह, ममता, करूणा, अपनत्व गायब सा है। व्यक्ति स्वयं से कट गया है समाज तो बहुत दूर की कौड़ी हो गयी। कमलेश्वर

का उपन्यास 'काली आँधी' इस बात की पुष्टि करता है–''भौतिकतावादी युग में आदमी आदमी न रहकर मात्र यंत्र बन गया है इसी यांत्रिकता के परिणामस्वरूप वह भावना–षून्य भी हो गया तो उसमें माननीय तत्वों की कमी के कारण जीवन से पकड़ भी क्षीण हो गई। इसलिए वह निरंतर विघटित व्यक्तित्व के लिए केवल भटकन, ऊहा पोह का यांत्रिक सा जीवन जीने पर विवश हैं।[98]

पुरुष ने इस दुनिया को या सामाजिक ढाँचे को अपने अनुसार बनाया है। यह पुरुष का वर्चस्व ही है कि यदि किसी कार्य को पुरुष करे तो ठीक और उसी को स्त्री करें तो पाप, अन्याय, अत्याचार माना जाए। हमारे शास्त्रों में नारी को सबला माना, देवी माना तथा सब कार्यो को करने वाली माना। सब धार्मिक अनुष्ठानों में तथा सामाजिक कार्यो के संचालन के लिए देवियों को चुना। मसलन विद्या देवी–सरस्वती, धनदेवी, लक्ष्मी, शक्ति, बलदेवी–दुर्गा। फिर भी अंतिम कीटों पुरुष अपने पास रखा। उसकी मानव सुलभ दुर्बलताओं को पुरुष ने बखूबी इस्तेमाल किया। स्त्री को कर्त्तव्य पथ पर बढ़ने दिया, अधिकार उसके छीन लिए। जब कभी स्त्री ने अधिकारों की मांग की, पुरुष की गलत नीतियों का विरोध किया तो, महिला को लांछित करने में भी चूक नहीं की। उसी मुँह से देवी और उसी मुँह से न जाने क्या–क्या असभ्य शब्दों का प्रयोग पुरुष अपने हित के लिए, अपनी सत्ता बचाने के लिए करता रहा है। कमलेश्वर के उपन्यास 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' में बेहतरीन उदाहरण है, इसका जब पुरुष स्त्री समाज के बारे में अपने हित के लिए गलत टिप्पणी करता हैं– ''औरत से बड़ी खाई इस दुनिया में नहीं। आम की तरह चूस लेती है। आदमी वही है जो औरत से अपने को बचाए। कभी उसके फंदे में न फँसे। अपनी जिंदगी जीना हो तो औरत को कोसों दूर रख तन ... बदन, धन–दौलत, ऐष आराम की दुष्मन है औरत। ..औरत कब धोखा दे देगी, कब प्यार करते–करते तुम्हारी जान की दुष्मन हो जाएगी, कोई ठिकाना नहीं।''[99]

इस प्रकार स्पष्ट है कि समाज में पुरुष का स्थान बड़ा है। पुरुष अपनी मानसिकता में समय—समय पर परिवर्तन भी लाता रहा है। स्त्री के प्रति समाजिक संबंधों के प्रति उसकी जिम्मेदारी बड़ी होती है। इस जिम्मेदारी को निर्वाहित करता हुए सामाजिक संबंधों में मधुरता, प्यार,स्नेह,करूणा,भावुकता का समावेष कर परिवार को समाज को गतिशीलता प्रदान करता है। कभी—कभी पुरुष अपने परिवेश तथा सामाजिक वातावरण से इतना प्रभावित हो जाता है कि वह स्वयं को बहुत बड़ा समझने लगता है तो कभी—कभी खुद से दूर हो जाता है। ऐसा विचित्र है यह पुरुष। इस तरह की तमाम मनोवैज्ञानिक, सामाजिक अवधारणाओं तथा युग सत्य की कसौटी पर कमलेश्वर के उपन्यासों में पुरुष परखे गए हैं।

समाज में स्त्री की स्थिति

सामाजिक संरचना, पारिवारिक व्यवस्था में पुरुष के साथ स्त्री की भी सहभागिता अत्यावष्यक होती है। पुरुष और स्त्री के संसर्ग से ही समाज की रचना हुई। एक नयी सृष्टि बनी। मनु थे तो श्रद्धा थी। स्त्री ईष्वर की सर्वोत्तम देन है। सुंदरता की, श्रद्धा भी प्रतिमूर्ति है। करूणा, दया, स्नेह, प्रेम, ममता, भावुकता, लज्जा, चिंता स्त्री के सबल आभूषण है। स्त्री के सबलता तथा स्त्रीत्व के कारक भी हैं। स्त्री का पुरुष से अलग कोई सत्ता नहीं परंतु सत्ता से कम उसका अपना समाज कम भी नहीं। मोहन राकेश लहरों के राजहंस में नाटक में कहते हैं कि ''स्त्री का आकर्षण पुरुष को पूर्ण पुरुष बनाती है। वह पुरुष में दया, करूणा, ममता, भावना के बीजों का रोपण करती है। वह पुरुष की पूरक हैं, अर्द्धांगिनी है, सहचारिणी है, सहधर्मिणी है तथा अनुगामिनी हैं।

भारतीय धर्मषास्त्रों में अर्धनारीष्वर की कल्पना तथा अवधारणा केवल रिक्त सोच नहीं बल्कि एक मजबूत अवधारणा है। अकेला पुरुष तथा अकेली महिला समाज संचालन में पूर्णतया सहयोग प्रदान नहीं

कर सकते। दोनों को एक दूसरे का पूरक बनकर ही सामाजिक गतिविधियों में शामिल होना पड़ेगा तभी जीवन सुखद तथा सानंद हो पाएगा। नारी सामाजिक बंधनों में बंधी है। सृष्टि की सर्जना में स्त्री का बहुत बड़ा स्थान है। वह द्वंद्व रहित से अलग द्वंद्वोन्मुख रहती है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार – पुरुष मुक्त है और नारी बद्ध।''[100] उसके साथ सामाजिक, पारिवारिक बंधनों की रिश्तों के बंधनों की एक लंबी श्रृंखला होती है।

पुरातन भारतीय सामाजिक व्यवस्था में अनेक तरह की रूढियाँ, कुरीतियाँ, कुविचार आए और वे जड़ की तरह फैलते गए। स्त्री एक सहभागिनी न होकर एक वस्तु एक प्राणी मानी गयी। उसको पूरकता के दर्जे से खारिज करने की अभिव्यक्तियाँ समाज में घर करने लगी। हमारे समाज के मध्यकालीन ढाँचे ने बहुत नुकसान पहुँचाया स्त्री को। इस समाज में यदि किसी को सबसे ज्यादा नुकसान पहुँचाया गया तो वे हैं–स्त्री और दलित। समाज में दोनों का जबरदस्त दमन हुआ। इसलिए आज स्त्री विमर्ष तथा दलित विमर्ष जैसे मुद्दे बनकर हमारे सामने आ रहे हैं, टकराते हैं। हमारे पास कोई जवाब नहीं होता। कमलेश्वर युग चेता तथा समय साक्षी रचनाकार थे। उनकी कलम से कोई बच नहीं पाया। सामाजिक बुराइयाँ, कुरीतियाँ आदि पर जमकर प्रहार किया। उनके अभिव्यक्ति कर समाज को सोचने पर भी मजबूर किया गया। 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' जो कमलेश्वर का बहुचर्चित उपन्यास है, जिस पर फिल्म भी बनी – बदनाम बस्ती के नाम पर उसमें स्त्री के प्रति विचार बहुत भयावह हैं। उपन्यास का पात्र सवनिंद गुरू कहते हैं कि–''नारी पाप का मूल है।''[101] इसी उपन्यास का एक अन्य पात्र सरनाम का नजरिया भी कम चिंताजनक नहीं हैं–''औरत से बड़ी खाई इस दुनिया में नहीं। आदमी वही है जो औरत से अपने को बचा जाए। कभी उसके फंदे में न फँसे। अपनी जिंदगी जीना हो तो औरत को कोसों दूर रख .....औरत कब धोखा दे देगी, कब प्यार करते–करते तुम्हारी

जान की दुष्मन हो जाएगी, कोई ठिकाना नहीं।''[102] यह हमारे समाज में पुरुष प्रधान सामाजिक व्यवस्था ने स्त्री की नियति बना दी। सभी बेकार के बंधन स्त्री के लिए बना दिये। जिससे सुमित्रानंदन पंत जैसे छायावादी कवि को भी बाद में कहना पड़ा– मुक्त करो नारी को मानव, धिर बंदिनी नारी को। युग–युग की बर्बर कारा से। जननी उसकी प्यारी को। पुरुष प्रधान समाज में स्त्री को बच्चे पैदा करने की मषीन, यंत्र तक माना। नारी के शरीर में भी मन है, हृदय है, भावनाएँ हैं बिल्कुल समझी नहीं गयी। बंध्या स्त्री की तो समाज में दुष्कर स्थिति होती है, उसे हेय दृष्टि से देखा जाता है। उसे सामाजिक रीति–नीतियों से च्युत कर दिया जाता है। कमलेश्वर के उपन्यास 'रेगिस्तान' में उन्होंने एक ऐसी ही वंध्या औरत की स्थिति के बारे में सामाजिक दृष्टिकोण को चित्रित किया–''बेकार धरती और बेकार औरत की कोई औकात नहीं होती लाला, कितना देती है धरती, कितना करती है औरत, लेकिन हासिल कुछ भी नहीं।''[103] लेकिन पुरुष के जीवन तथा सामाजिक व्यवस्था में स्त्री का महत्व बहुत होता है। 'वही बात' उपन्यास के खजांची की पत्नी मर जाती है, तब पता लगता है कि नारी का परिवार के लिए क्या महत्व होता है। खजांची समीरा से कहता हैं – ''औरत क्या होती है, यह औरत को खोकर ही मालूम होता है।''[104] प्रेमचंद भी गोदान में कहते हैं कि बिना घरनी की घर भूत का डेरा। यह हमारी सच्चाई है परंतु व्यवस्था हमारी स्त्री के खिलाफ बनी है।

आज हमारी सामाजिक व्यवस्था में स्त्री के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन भी दिखायी देता है। आधुनिक काल चिंतन तथा समानता की भावना का काल भी है, स्त्री और पुरुष दो ऐसे प्राणी है जो सामाजिक व्यवस्था में मित्र हैं, दोस्त हैं। यह सोच बनने लगी है। बढ़ती आधुनिक सोच से पुरुष मानसिकता में बदलाव आया। प्रगति के प्रत्येक पायदान पर आज महिलाएँ, स्त्री खड़ी है। स्त्री पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर प्रत्येक क्षेत्र में कार्यरत हैं। ऐसा कोई कठिन

कार्य नहीं जहां स्त्रियों ने अपनी उपस्थिति, सहभागिता दर्ज न करवायी हो। महिलाओं की दृढ़ सोच, प्रगति तथा स्वावलंबी विचारों ने पुरुष वर्चस्व को खत्म करने का कार्य किया है। पुरुष के विचारों में भी परिवर्तन आया। 'काली आँधी' उपन्यास का जग्गी बाबू ऐसे पुरुष की बानगी है जो कहते हैं कि–''देश निर्माण में औरतों को भी आगे आना चाहिए... यह बेहद जरूरी है कि हमारे घरों की औरतें आगे आएँ और हर काम में मदां का हाथ बटाएँ।''[105]

आधुनिक भारतीय सामाजिक व्यवस्था तथा बढ़ते व्यापारीकरण, औद्योगिकरण, बजारीकरण की नीति ने भी स्त्री की छवि उसकी देह को खूब बेचने का कार्य किया है। आज बाजार की प्रत्येक वस्तु के विज्ञापन में जरूरी और जबरदस्ती तरीके से स्त्री की छवि को सामने लाकर उसे एक सौंदर्य, आकर्षण का नमूना बना दिया। स्त्री की छवि, उसके सौंदर्य के कारण उसे इसी तरीके की नौकरियाँ मिलने लगी। स्त्री से अपेक्षा होने लगी भी वह अपने शरीर के सौंदर्य का बनाये रखे आदि–आदि। इस प्रकार उसे एक विज्ञापन का जरिया बना दिया। 'डाक बंगला' की नायिका 'इरा' नौकरी के लिए क्या करती है। उसको क्या सलाह दी जाती है। वह क्या–क्या करती है। ''तिलक मैंने लिपिस्टिक लगाना छोड़ दिया था, पर ये नौकरियाँ करते हुए मुझे स्मार्ट बनने की हमेशा सलाह मिलती रही। स्मार्ट बनने का मतलब होता है कि अपने को दूसरों की नजरों में चुभा दो। और अपने शरीर और रूप के सहारे बेजान चीजों को बेचो।[106]

हमारे सभ्य समाज में स्त्री के प्रति दृष्टिकोण तथा उस पर किये जा रहे कुकृत्य सामाजिक संरचना को बहुत कमजोर बना रहे हैं। स्त्री को वेष्यावृति के लिए मजबूर करना, कन्या भ्रूण हत्या, लड़कियों का अपहरण तथा विक्रय, प्यार करना फिर धोखा देना, विधवा जीवन की त्रासदी। विधवा के प्रति समाज का दृष्टिकोण। नित्य प्रति बलात्कार, सामूहिक बलात्कार एक सभ्य समाज पर कालिख है। 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' उपन्यास में वेष्यावृति

समस्या को पुरजोर तरीके से उठाकर समाज के सामने रखकर सोचने पर मजबूर किया है। प्यार, धोखा और नाटकीय जीवन बनाने में पुरुष तथा सामाजिक सोच का ही हाथ होता है। 'आगामी अतीत' की चंदा पुरुष से प्रेम करती है, पुरुष उसे धोखा देता है। बेटी के साथ रहते हुए विक्षिप्त हो जाती है। चंदा तो पागलपन में मृत्यु का शिकार हो जाती है। साथ बेटी को निराश्रित बेसहारा कर जाती है। बेटी वेष्यावृति के दलदल में जाने को मजबूर हो जाती है। पुरुष का संरक्षण मिलता नहीं। चंदा की बेटी की नियति बहुत बेटियों या स्त्री जाति की नियति हैं – ''अब तो अम्मा भी नहीं थी। उसके बाद मेरे सामने क्या रास्ता रह गया था ? सिवाय इसके कि कोठे पर बैठ जाऊँ। कहीं कोई अपना हो तो शायद ठोक–तोप कर मेरी जिंदगी को रास्ते पर ला देता।''[107]

इस प्रकार हमारे समाज में स्त्री का स्थान विषयक कुछ उदाहरणों से कमलेश्वर की दृष्टि को देखा, परखा गया जो अपने युग के सत्य को बहुत करीबी के साथ उकेरते हैं। चित्रित करते हुए उद्घाटित करते हैं। कमलेश्वर के उपन्यास अपने युग के ज्वलंत दस्तावेज है। स्त्री के प्रति सामाजिक सोच, पुरातन सोच, नजरिया। स्त्री का शोषण, अत्याचार, दोयम दर्जे का व्यवहार सामाजिक व्यवस्था की उपज हैं। बदलाव आया है परंतु अभी भी मंजिल शेष हैं।

वैवाहिक संस्था

विवाह या कहे कि वैवाहिक संस्था किसी न किसी रूप में संसार के सभी सभ्य समाजों में पायी जाती है। सामाजिक संरचना तथा यौन इच्छाओं की पूर्ति के लिए विवाह संस्था का जन्म हुआ, जो परिवार तथा नातेदारी का भी आधार है। हिंदू धर्म में तो वैवाहिक संस्था का पारिवारिक तथा सामाजिक संरचना में विशिष्ट स्थान हैं। हिंदुओं में विवाह को एक धार्मिक संस्कार के रूप में भी स्वीकार किया गया है। अन्य धर्मो एवं समाजों में इसे समझौता माना, परंतु हिंदू धर्म

में धर्म से जोड़कर इसकी पवित्रता को कायम रखा गया। चार आश्रमों में ब्रह्मचर्य के पश्चात् गृहस्थ जीवन प्रत्येक के लिए आवश्यक बताया गया। चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष बनाए गए। इनमें चारों की पूर्ति विवाह के पश्चात् ही हो पाती है। इसलिए विवाह की महत्ता तथा अनिवार्यता स्वतः ही बढ़ जाती है। इसी प्रकार तीन ऋण बताए गए पितृ ऋण, देव ऋण एवं ऋषि ऋण। इन ऋणों को एक विवाहित व्यक्ति ही चुका सकता है। उऋण हो सकता है। पुरातन धार्मिक ग्रंथों तथा मानव जीवन को सभ्यता का पाठ पढ़ाने वाले ग्रंथों, शास्त्रों में लिखा गया है कि विवाह अत्यावष्यक है। सृष्टि की उन्नति के लिए, मानव कल्याण के लिए। वेद अविवाहित व्यक्ति को अपवित्र मानते हैं तो मनु लोक–परलोक की उन्नति के लिए विवाह को जरूरी मानते हैं। शास्त्रों में लिखा है कि पति–पत्नी एवं बच्चों से युक्त मानव ही पूर्ण मानव है। सभी धर्म ग्रंथ कहते हैं कि विवाह करके संतान के माध्यम से ही मनुष्य अपने को, खुद को अमर बनाता है। विवाह प्रत्येक समाजों में आवश्यक बताया, पर उसके स्वरूप स्थान तथा परिवेश के हिसाब से बनते और बिगड़ते रहे।

विवाह शब्द का शाब्दिक अर्थ हैं–'उद्रह' अर्थात् वधू को वर के घर ले जाना।[108] लूसी मेयर के अनुसार–विवाह स्त्री पुरुष का ऐसा योग है, जिससे स्त्री से जन्मा बच्चा माता–पिता का वैध संतान माना जाय।''[109] डब्ल्यू एच.आर. रिवर्स कहते हैं कि–''जिन साधनों द्वारा मानव समाज यौन संबंधों का नियमन करता है, उन्हें विवाह की संज्ञा दी जा सकती है।''[110] बोगार्डस के अनुसार–''विवाह स्त्री और पुरुष के पारिवारिक जीवन में प्रवेष करने की एक संस्था है।''[111] मजूमदार एवं मदान लिखते हैं–''विवाह में कानूनी या धार्मिक आयोजन के रूप में उन सामाजिक स्वीकृतियों का समावेष होता है जो दो विषम लिंगियों को यौन–क्रिया और उससे संबंधित सामाजिक–आर्थिक संबंधों में सम्मिलित होने का अधिकार प्रदान करती है।''[112] वेस्टरमार्क ने विवाह से बंधन में स्त्री–पुरुष की संख्या को भी व्यक्त किया है।

''विवाह एक या अधिक पुरुषों का एक या अधिक स्त्रियों के साथ होने वाला वह संबंध है, जिसे प्रथा या कानून स्वीकार करता है और जिसमें इस संगठन में आने वाले दोनों पक्षों एवं उनसे उत्पन्न बच्चों के अधिकार एवं कर्त्तव्यों का समावेष होता है।''[113]

इस प्रकार विवाह को विषम लिंगियों को पारिवारिक जीवन में प्रवेष करने की सामाजिक, धार्मिक अथवा कानूनी स्वीकृति है। स्त्री–पुरुषों एवं बच्चों को विभिन्न सामाजिक एवं आर्थिक क्रियाओं में सहगामी बनाना संतानोत्पति करना तथा उनका लालन–पालन एवं समाजीकरण करना विवाह में परिवार की आधारषिला है। यह नातेदारी का आधार है। इससे आर्थिक हित भी पूर्ण होते हैं। साथ ही मानसिक संतोष तथा रोगों से मुक्ति भी मिलती है। धार्मिक कार्यो के लिए भी विवाह जरूरी है। इस तरह विवाह की महता पर कोई प्रश्न चिह्न नहीं लगाया जा सकता।

मानव के जन्म से लेकर विकास तक की यात्रा का अध्ययन विश्लेषण करते हैं तो समाज में अन्य परिवर्तनों के साथ विवाह में भी समय–समय पर परिवर्तन होता आया है। समय तथा समाज विशेष में अलग भी कुछ हो सकता है, परंतु बाहरी तौर पर इन्हीं में आ जाते हैं। इन प्रकारों, भेदों, उपभेदों तथा अन्यान्य तरह की परिभाषाएँ तथा विश्लेषण हमारा अभिष्ट नहीं। क्योंकि विषय की पूर्व पीठिका के लिए हमें यहाँ इस तरह का अध्ययन तथा सारांष प्रस्तुत किया गया।

1.सामाजिक विवाह

भारतीय धर्म ग्रंथों तथा इतिहास पुराणों में आठ तरह के विवाहों का उल्लेख किया गया है। विवाह के आठ प्रकार हैं – 1. ब्रह्म विवाह 2. दैव विवाह 3. आर्ष विवाह 4. प्राजापत्य विवाह 5. असुर विवाह 6. गांधर्व विवाह 7. राक्षस विवाह 8. पैषाच विवाह। वर्तमान में हिंदुओं में ब्रह्म, असुर, गंधर्व तथा कहीं–कहीं पैषाच विवाह प्रचलित है। दैव, आर्ष, प्राजापत्य एवं राक्षस विवाह पूर्णतः समाप्त हो चुके हैं। डॉ.

मजूमदार के अनुसार हिंदू समाज अब केवल दो स्वरूपों को मान्यता देता है– ब्रह्म तथा असुर। उच्च जातियों में पहले प्रकार का और निम्न जातियों में दूसरे प्रकार विवाह प्रचलित है– यद्यपि उच्च जातियों में असुर प्रथा पूर्णतः नष्ट नहीं हुई है।''[115] उपर्युक्त वर्णित विवाहों के सम्मिलित रूप को सामाजिक विवाह कहते हैं।'' परंतु सामाजिक विवाह इनसे थोड़ा भिन्न भी है। वैसे विवाह एक सामाजिक कार्य ही है कोई व्यक्तिगत या निजी कार्य नहीं है। इससे समाज की संरचना होती है।

हिंदू धर्म में सामाजिक विवाह को ही पूर्णतः मान्यता है–सामाजिक। वैधानिक तौर पर अलग बात है। भारतीय परिवेश में अभी भी सजातीय तथा सगौत्रीय विवाहों का ही प्रचलन अधिक है। अपने समूह, पुराने संबंधों के मध्य ही विवाह करना अधिक प्रचलित हैं। कहीं–कहीं अन्य प्रकार भी समाने आते हैं। परंतु उनकी संख्या बहुत कम है। सामाजिक विवाह औसतन अभी भी अधिक हो रहे हैं।

समाज में रह रहे अपनी जाति के लोगों तथा गौत्र टालने की परंपरा लगभग संपूर्ण भारत के हिंदू परिवारों में प्रचलित हैं। सामाजिक विवाह यौन इच्छाओं की पूर्ति से अधिक सामाजिक उत्तरदायित्वों का बोध अधिक करवाता है। कमलेश्वर के उपन्यासों में सामाजिक विवाहों का समर्थन तथा उनके साथ बुराईयाँ, जैसे–दहेज प्रथा आदि का भी उल्लेख हैं। यह भी नही कह सकते कि कमलेश्वर ने पूर्णतया सामाजिक विवाहों का समर्थन किया है। वे प्रेम विवाह तथा अंतरजातीय विवाहों के भी समर्थक हैं। आधुनिक युग की वैष्विक परिस्थिति ने सामाजिक विवाहों को नुकसान पहुँचाया है।

कमलेश्वर सामाजिक विवाहों के महत्व को प्रतिपादित करते हैं। ''उस हिंदू वैवाहिक कर्मकांड के दौरान इतना भर जरूर महसूस हुआ था कि अब मैं कहीं और भी प्रतिश्रूत हो गया हूँ। उन कर्मकांडो के बीच धीरे–धीरे एक जुड़ने की भावना पैदा हुई थी और लगा था कि उन दो दिनों में मिल जुलकर हर जगह साथ–साथ अर्ध्य देते या

हवन करते हममें कुछ सन्निकटता आई थी।''[116] सामाजिक विवाह में बारातियों तथा धरातियों का आपसी मिलन। बरातियों का धरातियों द्वारा स्वागत व सात फेरे की रष्म अपने आप में एक दिव्य एवं अद्भुत कार्य है। सामाजिक विवाह के पश्चात् लड़का–लड़की का सामाजिक रीति–नीति से समाज के साथ रहना। वधू का वर पक्ष के लोगों के साथ आपसी सामंजस्य अपने में अद्भुत कार्य है। सुबह–दोपहर–शाम उपन्यास में कमलेश्वर सात फेरों की महत्ता बताते हैं – शांता के पैर दो अनजाने पैरों के साथ–साथ अग्नि के फेरे ले रहे थे।[117]

सामाजिक विवाह का एक महत्व और भी है जिससे परिवार के सदस्य वरिष्ठ–कनिष्ठ के बीच के रिश्तों के निवर्हन प्रणाली को सीखते हैं। यही एक भाव जो सदस्यों को आपस में जोड़ता है। बड़ों द्वारा छोटों से प्यार–स्नेह तथा छोटों द्वारा बड़ों का आदर सम्मान परस्पर होने से पारिवारिक प्रणाली तो मजबूत बनती ही है, सामाजिकता की प्रगाढ़ता भी होती है। बड़ों के प्रति आदर सम्मान का भाव 'रेगिस्तान' उपन्यास में दृष्टव्य हैं–बारात में कई बड़े बुजुर्ग भी थे। बड़े दादा उनका जरा ज्यादा ही लिहाज जता रहे थे। भाभी के लिए फर्स्ट क्लास का टिकट कटाया था। बाकी बारात थर्ड क्लास में थी। बड़े दादा के लिहाज के कारण भाभी वाले डिब्बे में जाकर बैठ भी नहीं रहे थे।''[118] यही भाव हमें आपस में मिलाते है। हमारे रिश्तों को प्रगाढ़, मजबूत बनाते हैं।

आधुनिक युग में अनेक सामाजिक बुराइयों ने समाज व्यवस्था को खोखला किया है, जिससे विवाह संबंध भी अछूते नहीं रहे। हमारी सामाजिक व्यवस्था पर भी इन दूषित प्रवृतियों ने आघात पहुँचाया है। इनमें एक ऐसी कुरीति जिसने समाज को भीतर तक खोखला कर दिया है। दहेज प्रथा एक ऐसी सामाजिक कुरीति है जिसने सामाजिक विवाह व्यवस्था को कलंकित किया है। आधुनिक युग में अर्थ की महत्ता इतनी हो गयी कि यह रिश्तों के मध्य की पैठ रही है। अब लड़का–लड़की का क्रय–विक्रय हो रहा है। यह कहने में अतिशयोक्ति

नहीं होगी कि अब लड़को की बोली लगती है। जिसने ज्यादा बोली लगायी। वह उसे खरीदता है। अनावष्यक लोभ—लालच। बेटी के पिता के कारोबर आदि पर नजर लोगों की गढ़ने लग गई। इस लोभ में कई बार गलत वर—वधू को चयन हो जाता है। जिससे वर—वधु की जिंदगी नरक बन जाती है। भावी जीवन कीचड़ में सन जाता है। आगामी अतीत उपन्यास के कमलबोस के साथ यही होता है—''अब मालती कैमिकल्स का सारा कारोबार मिस्टर कमलबोस देखेंगे। यह कम्पनी मेरी तरफ से कमलबोस और निरुपमा के लिए शादी की सौगात।''[119] विवाह के कोमल, सुमधुर बंधन के बीच धन—दौलत ने गृहस्थियों को बर्बाद कर दिया और फिर दोनों वर—वधू उसे एक हादसा ही बताते हैं—वह एक भयानक हादसा था प्रशांत। शादी करना ही एक हादसा था, जिसके बाद में कभी चैन से बैठ नहीं पाया।''[120] इन कोमल संबंधों के बीच किसी तरह का स्वार्थ, धन, दौलत, लोभ, लालच नहीं चलता। ये प्यार के विश्वास के रिश्ते हैं। यदि इनके मध्य किसी तरह का स्वार्थ आया तो जुदाई भी सन्निकट हो जाती है।

कमलेश्वर एक युगीन संदर्भ के समझने वाले, नब्ज को पकड़ने वाले तथा उसे शब्दों में खूबसूरती से पिरोने वाले रचनाकार थे। उनके उपन्यास अपने युग की सच्चाई को बयां करते हैं। सामाजिक विवाह के बंधन में बंधे स्वयं कमलेश्वर उसकी मजबूती, दृढ़ता, महत्ता को जानते थे। इससे बेहतर विकल्प नहीं मानते थे, बषर्ते जोड़ों के मध्य मधुरता, विश्वास, निःस्वार्थता हो।

2. प्रेम तथा अंतरजातीय विवाह

प्रेम और विवाह दोनों ही शब्द अति प्राचीन है। लेकिन आधुनिक युग में प्रेम की परिभाषा करना एक कठिन कार्य है। डॉ. बिमलेन्दु गुप्त ने प्रेम को परिभाषित करते हुए इसके स्वरूप को स्पष्ट किया हैं—''स्त्री—पुरुष के बीच गहरी आसक्ति, जिसमें परस्पर सहानुभूति

निष्ठा, अन्डर स्टेंडिंग, वफादारी और इससे भी अधिक एक–दूसरे के लिए गहरी संवेदना हो, उसे प्रेम कहते हैं।''[121]

यथार्थ रूप में प्रेम एक व्यापक अवधारणा है। अगर इसकी परिणति विवाह में नहीं होती है तो यह केवल स्त्री–पुरुष का प्रेम मात्र रह जाता है। अगर इसकी परिणति प्रेम के बाद विवाह में हो जाती है, तो प्रेम–विवाह कहलाता है। यह भी स्पष्ट है कि विवाह समाज की आवश्यक रस्म है। वह मात्र शारीरिक लगाव या सैक्स नहीं है।

इसी प्रकार अंतरजातीय विवाह भी हमारे समाज में प्राचीनकाल से ही होते रहे हैं। सजातीय वर–वधू का एक साथ मिलने न हो तथा वर–वधू की जाति भिन्न हो तो उस तरह के विवाह को अंतरजातीय विवाह कहते है। इस तरह के विवाह प्राचीनकाल में कम तथा आज अधिक हो रहे हैं। बढ़ता शहरीकरण, वैष्वीकरण तथा ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र में उन्नति के साथ इस तरह के विवाहों में प्रगति तथा वृद्धि हुई है।

वर्तमान समय में वैष्वीकरण के बढ़ते प्रभाव विश्व व्यवस्था का प्रभाव तथा संचार साधनों, मनोरंजन के साधनो व सोशल मीडिया के कारण शिक्षित युवक–युवतियों का सामाजिक विवाह व्यवस्था की जगह प्रेम–विवाह तथा अंतरजातीय विवाहों की तरफ रूचि बढ़ी है। शिक्षित युवक–युवतियाँ अपने भविष्य के प्रति अधिक सचेत, जागरूक हैं। वे अपनी अच्छाई–बुराई को भली–भाँति समझते हैं। माता–पिता के बहुत से निर्णय उनके स्वीकार्य नहीं। जहाँ पहले माता–पिता विवाह संबंध कर आते थे वे ही मान्य होते थे, अब थोड़ा परिवर्तन आया है। माता–पिता द्वारा बाधक स्थिति को देखकर ऐसे जोड़े न्यायालय में जाकर विवाह बंधन में बंध जाते है। फिर कानून भी इसकी स्वीकृति देता है। कमलेश्वर के उपन्यासों में पुरातन मूल्यों तथा नवीन मूल्यों का संघर्ष भी है तो अच्छे को स्वीकार्य भी किया गया है। समुद्र में खोया हुआ आदमी उपन्यास में तारा हसबंस से प्रेम करती हे तथा विवाह भी करते हैं। पुरातन पंथी परिवार में हड़कंप मच

जाता है। सब लोग नहीं चाहते कि तारा हरबंस से प्रेम विवाह करे। आखिर प्रेम विवाह तारा का करना पड़ा। तारा घर से पति के घर चली गयी। कुछ समय बाद स्थिति सामान्य हो जाती है। ''घर में जो भूचाल तारा को लेकर आया था, वह भी शांत हो गया था। तारा की शादी कर ली गई और वह एक बक्सा लेकर अपने घर चली गई।''[122]

कभी–कभी पति की व्यस्तता भी परिवार के टूटने का कारण बनती है और सामाजिक विवाह की भी असफलता सिद्ध होती है। पत्नी के आशा, आकांक्षा भावना को न समझकर दोनों युगल अलग–अलग पटरी पर दौड़ते हैं और पति पत्नी को केवल घर की चाहरदीवारी में कैद वस्तु समझता है। आखिर वह वस्तु एक दिन पर पुरुष की तरफ आकृष्ट हो जाती है। ऐसी स्थिति में जो उसकी भावनाओं को ठीक से समझता है, वह उसी के प्रेम में तल्लीन हो जाती है।, तत्पष्चात् विवाह की स्थिति तक आ जाते हैं, पूर्व पति से तलाक की नौबत आ जाती है। वही बात उपन्यास में नायक प्रशांत अपनी पत्नी समीरा को समय नहीं देता। चौबीस घंटे अन्य कामों में व्यस्त रहता है। परिणाम समीरा कुन्ति सी हो जाती है और अन्य पुरुष नकुल की तरफ आकृष्ट हो जाती है और प्रेम विवाह कर लेते हैं–''प्रशांत से तुम नहीं, मैं खुद बात करूंगी। तुम बात करोगे तो वह अपमानित महसूस करेगा। जिस सच्चाई को मैंने तुम्हारे साथ मंजूर किया है, उसे प्रशांत के सामने भी मंजूर करने में मुझे कोई हिचक नहीं है।''[123]

समीरा की निरंतर उपेक्षा तथा अकेलापन के कारण समीरा प्रशांत से अलग होकर नकुल के पास आने का विचार करती है। नकुल इस स्थिति में उसका सहायक बनकर सामने आता है, परिणामस्वरूप समीरा नकुल से प्रेम विवाह करने की सोचती है–''आदमी अपना अकेलापन भी पत्नी को दे देता है–इसलिए वह दोहरी अकेली हो जाती है। मैं जानता हूँ, आज अगर में तुम्हारा प्रेमी बन जाऊँ तो न हो तुम अकेली रहोगी, न मैं। पर सिर्फ प्रेम से जिंदगी नहीं बीतती,

जिंदगी सहने से चलती है ... आज जब मैं तुम्हारा न होना रहता हूँ, तो जीता हूँ।''[124] जब स्थिति काबू से बाहर हो जाती है, तो ऐसी ही भाव पूर्ण बात व्यक्ति के मुख से निकलनी शुरू हो जाती है, प्रशांत भी ऐसा ही करता है।

प्रेम–विवाहों के साथ आज हमारे समाज में अंतरजातीय विवाहों में भी तेजी से वृद्धि हुई है। स्वतंत्रता आंदोलन के समय से ही हमारे देश में धार्मिक तथा सामाजिक जनजागृति के कार्यक्रम चले। संस्थाएं सामने आयी। आर्य समाज, ब्रह्मसमाज, थियोसॉफिकल सोसाइटी आदि संस्थाओं ने इसकी मुखालफत की है। षिक्षा के बढ़ते प्रभाव, यातायात के साधनों में प्रगति, नगरीय संस्कृति मनोरंजन के साधन, सह षिक्षा तथा खुलापन ने अंतरजातीय विवाहों को पनपने का अवसर प्रदान किया है। भारतीय संविधान ने सभी को समान अधिकार दिये हैं। विवाह की स्वतंत्रता है। कोई भी युवक–युवती किसी भी जाति–धर्म, सम्प्रदाय के व्यक्ति से शादी करें। संविधान ऐसे व्यक्तियों को पूर्ण स्वतंत्रता तथा सुरक्षा प्रदान करता है। आजादी के बाद इस तरह के विवाहों में तेजी से वृद्धि हुई है। महिला आंदोलन तथा महिलाओं की जागृति भी एक कारण है। कमलेश्वर के उपन्यासों 'लौटे हुए मुसाफिर', डाक बंगला, आगामी अतीत, समुद्र में खोया हुआ आदमी, वही बात तथा एक सड़क सत्तावन गलियाँ उपन्यासों में अंतरजातीय विवाहों की झलक देखने को मिलती है। 'लौटे हुए मुसाफिर' उपन्यास में अंतरजातीय विवाह का एक उदाहरण दृष्टव्य है – ''सुना है जिन्ना साहब मजबह को नही मानते थे.. वे वह सब करते हैं जो इस्लामी शरीयत के खिलाफ है। वे न तो उर्दू जानते हैं, न अरबी। उन्होंने पारसी लड़की से शादी की है।''[125] इस तरह के विवाहों की सफलता तथा असफलता की चर्चा भी कमलेश्वर के उपन्यासों में मिलती है।

इस प्रकार कमलेश्वर प्रेम–विवाह तथा अंतरजातीय विवाह को बुरा तो नहीं मानते लेकिन रोमांटिक प्रेम विवाह का समर्थन भी नहीं करते। वे सर्च्च प्रेम विवाह में लोक–परलोक का संबंध मानते हैं। इस

तरह के विवाहों की सफलता की प्रामाणिकता के बारे में बहुत कुछ कहा नहीं जा सकता। इस प्रकार के विवाहों के पीछे केवल प्रेम, भाव तथा आपसी विचारों का सामंजस्य ही मूल होता है। परिवार समाज का डर, बधंन कम होता है। इसलिए इनका जोड़ बहुत मजबूत तो नहीं होता, थोड़ा सा मतभेद हुआ विघटन, टूटन दरार पड़ने लग जाती है। प्रेम और दाम्पत्य संबंध में बहुत अंतर है। जिसे निर्वाह करना बहुत ही समझदारी से करना होता है।

3.अवैध संबंध :

सामाजिक, वैवाहिक संबंधों के अतिरिक्त कुछ ऐसे संबंध बन जाते हैं, जिसे न तो समाज मान्यता देता तथा न कानून मान्यता देता। नाम ही अवैध संबंध रखा गया है। यानी वैधानिक, सामाजिक दृष्टि से हेय माना जाये, वर्जित माना जाए। समाज में विशेषकर हमारे वैवाहिक शादी–षुदा दाम्पत्य जीवन में असंतुष्टि, विशेष आकर्षण, निरादर, उपेक्षा आदि के कारण दोनों ही पक्ष–पति तथा पत्नी एक दूसरे से खफा से रहने लगते हैं। उनमें दाम्पत्य रिश्तों के बीव विशेष तरह का तनाव, टकराहट देखी जा सकती है। इस तनाव भरे पारिवारिक वातावरण से स्त्री हो, चाहे पुरुष दोनों ही बाहरी स्त्री तथा पुरुष के आकर्षण तथा संसर्ग से खुशी, शांति खोजते हैं। कमलेश्वर के उपन्यासों में इस तरह के संबंधों का चित्रण, वर्णन देखा जा सकता है। इस तरह के सामाजिक दृष्टि से वर्जित रिश्ते एक दिन की उपज नहीं है। लंबे समय तक किसी का निरंतर निरादर उपेक्षा से या फिर यौन असंतुष्टि से भी पनपते है। इन संबंधों में कहीं तो आर्थिक कारण सामने आते हैं तो कही लाचारी, बेबसी तथा नषा भी एक कारक बनता है।

पति द्वारा पत्नी की उपेक्षा, यौन असंतुष्टि, पत्नी का असहयोग, निरादर पर पुरुष की ओर संबंध बनाने के लिए अवसर प्रदान करते हैं। उपेक्षा, निरादर की शिकार महिला के एक बार जब कोई पुरुष

प्यार स्नेह से बोल लेता है, तो वही उसे सबसे आत्मीय, प्रियजन नजर आने लगता है। 'तीसरा आदमी' उपन्यास में इस तरह हमारे दाम्पत्य रिश्तों में तीसरा आदमी प्रवेष कर जाता है। वह तीसरा आदमी जब दाम्पत्य रिश्तों में प्रवेष करता है तो हमारी कमियों की वजह से धीर–धीरे मन–मस्तिष्क पर छा जाता है, अधिकार हो जाता है। ''एक बार जब यह दूसरा आदमी हमारे जीवन में प्रवेष पा जाता है त बवह हमारी कमियों के कारण शनैः शनैः अपना आधिपत्य जमा लेता है। उसका अधिकार बहुत अधिक हो जाता है और फिर मन–मस्तिष्क में वही छाया रहता है।''[(126)] पारिवारिक तथा दाम्पत्य तनाव व लंबे समय तक पत्नी को घर की चहारदीवारी में बंद करके रखना। निंरतर निरादर, उपहास करते रहने से पत्नी एक दिन दूसरे मर्द की तरफ आकृष्ठ हो उठती है। उसकी भी आशा, आकांक्षाएँ होती है। वह भी तो मानव है। उसकी भी तो भावनाएँ हैं। बच्चों के बड़े हो जाने, घर में अकेलापन महिला के लिए असहनीय हो जाता है। वह घर से बाहर निकलना चाहती है। वह अन्य पुरुष का सहारा लेना उचित समझती है।

औरत घर की चहारदीवारी से एकबार जैसे ही बाहर निकलती है, फिर वह धीरे–धीरे अन्य पुरुष के आकर्षण में बंधने लगती है और फिर एक दिन अपने पति से विवाह–विच्छेद करने के लिए खुलकर स्वयं आ जाती है। 'वही बात' उपन्यास में होता है जब पत्नी अपने पुरुष मित्र के आकर्षण से प्रभावित होकर अपने पति प्रशांत को खुद संबंध विच्छेद करने की बात साहसपूर्वक कह देती है। वह अपने प्रेमी से कहती है–''जिस सच्चाई को मैंने तुम्हारे साथ मंजूर किया है उसे प्रशांत के सामने भी मंजूर करने में कोई हिचक नहीं है।''[127] पुरुष के निरादर के कारण ही 'लौटे हुए मुसाफिर' उपन्यास की सलमा सत्तार के सम्पर्क में आयी।

स्त्री का जीवन बहुत ही बंधनो से जकड़ा हुआ है। वह जैसे ही घर–दहलीज से बाहर निकली। समाज भेडिए की तरह नजर गडाए

बैठा है। पति से संबंधों में दरकन, टूटन औरत को अन्य पुरुष की तरफ आकृष्ट करता है। कभी–कभी औरत इतनी भटक जाती है कि एक पुरुष से दूसरे, दूसरे से तीसरे और इस तरह वह अनेक पुरुषों के साथ संबंध बनाती है, स्थापित किसी से भी नहीं कर पाती। नतीजा वह एक मुसाफिर की तरह हो जाती है। उसका निरंतर शोषण होता रहता है। कमलेश्वर के उपन्यास 'डाक बंगला' उपन्यास की 'इरा' की जिंदगी इसी तरह की है। उसका जीवन डाक बंगले की तरह बनकर रह गया। जैसे 'डाक बंगला' में एक के बाद एक आदमी आते रहते हैं, और चले जाते हैं, स्थायी कोई नहीं रहता। 'इरा' भी डाक बंगला बन गयी। उसके जीवन में पुरुष अनेक आये परंतु स्थायी रूप से नहीं। अंत में 'इरा' पछताती है, महसूस करती है, परंतु समय निकल चुका था। इरा महसूस करती है– ''तुम एक गलत मोड़ पर मुड़ गई इसलिए अब तुम जिंदगी जीना नहीं उसे तोड़–मरोड़ देना चाहती हो।[128]

दाम्पत्य जीवन में तीसर आदमी का प्रवेष वह चाहे स्त्री हो या पुरुष, खतरनाक होता है। कई बार तो पति–पत्नी में से कोई एक इस व्यक्ति की वजह से आत्महत्या तक कर लेते हैं। ''किसी होटल के कमरे में जाकर सुमंत ने आत्महत्या कर ली थी। शायद किसी तीसरे आदमी के कारण।[129]

इन अवैध संबंधों का नतीजा सुखद नहीं बहुत खतरनाक निकलता है। हिंसा, प्रतिहिंसा, अषांति, मानसिक अषांति तथा पारिवारिक वातावरण में अजीबोगरीब तरह का शक–संदेह, अविश्वास सामने आता है। परिणामतः आत्महत्या की कोशिश या आत्महत्या करना तक ही स्थिति बन जाती है। आधुनिक काल में इस तरह के संबंधों की संख्या में निरंतर वृद्धि होती जा रही है। आर्थिक, भौतिकवादी युग में पवित्र दाम्पत्य संबंध निरंतर प्रभावित हो रहे हैं। श्रद्धा और विश्वास का रिश्ता आर्थिक जाल में फंसकर तार–तार है। कमलेश्वर के डाक बंगला, वही बात, तीसरा आदमी, लौटे हुए

मुसाफिर, एक सड़क सत्तावन गलियाँ उपन्यासों में अवैध संबंधों की विस्तृत चर्चा है। क्योंकि कमलेश्वष की सामाजिक दृष्टि बहुत उर्वर है।

समाज तथा सामाजिक संरचना का अध्ययन बहुत विस्तृत तथा विश्लेषण की मांग करता है। समाज में रहने वाले व्यक्तियों संबंधों, पारिवारिक इकाई, विवाह संस्था, सामाजिक संबंध सब इसमें आ जाते हैं।

प्रस्तुत अध्याय में पारिवारिक इकाई, सामाजिक संबंध तथा समाज में पुरुष एवं स्त्री के स्थिति के साथ वैवाहिक संस्था पर भी विचार किया गया है। भारतीय परिवेश में परिवार का मतलब संयुक्त परिवार ही होता है। परंतु आधुनिक युग में एकल परिवार का प्रत्यय सामने आया। आर्थिक तथा वैष्वीकरण के कारणों से एकल परिवारों को बढ़ावा मिला है। समाज में रहते है तो सामाजिक कर्त्तव्यों, संबंधों का निर्वाह तो स्वतः ही करते बनता है। आपस में पति–पत्नी के संबंध, पड़ोसी के साथ हमारे संबंध तथा परिवार में माता–पिता तथा संतान के आपसी संबंध परिवार की उन्नति, गरिमा के लिए आवश्यक होते हैं।

हम जिस समाज में रहते है। उसी समाज की पुरातन मान्यता स्त्रियों के प्रति बहुत लोकतांत्रिक रही है। पुरुष की स्थिति परिवार के मुखिया तथा कमाने वाले की हैं, तो औरत परिवार की अन्नपूर्णा की तरह है। वह गृहलक्ष्मी होती है। उसकी उपस्थिति घर को बरकत प्रदान करती है। परंतु बदलावों के चलते इनके संबंधों में भी बदलाव देखा जाता है।

विवाह एक पवित्र संस्था है। इसके रूप–स्वरूप देषकाल, परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित होते हैं। परंतु इसकी सत्ता सभी वैष्विक समाजों ने स्वीकारा है। जीवन का यह एक पुनीत कर्त्तव्य। परिवार तथा समाज दायित्व में विवाह करना भी एक कर्त्तव्य है। विवाह करना केवल यौन–इच्छा पूर्ति नहीं बल्कि एक सामाजिक उत्तरदायित्व है जिसे पूर्ण करना होता है।

कमलेश्वर के सभी उपन्यासों में इस तरह सामाजिक रीति–नीति तथा संबंधों का गहनता के साथ चित्रण है। कमलेश्वर एक युग चेता, युग बोध को गंभीरता से महसूस करने वाले उपन्यासकार हैं। उनके उपन्यास स्वातंत्र्योत्तर भारतीय सामाजिक व्यवस्था के जीवंत दस्तावेज हैं।

संदर्भ संकेत

1. प्रो. एम.एल. गुप्ता, डॉ. डी.डी. शर्मा – सामाजिक मानवषास्त्र, पृ. 44
2. डी.एन. मजूमदार, टी.एन. मदान – An Introduction to Social Anthropology पृ. 32
3. Tal Colt Parsons – Essays in Social Theory, पृ. 89–90
4. पिडिंगटन & An Introduction to Social Antropology, पृ. 107
5. मैकाइवर एवं पेज–समाज, (हिंदी संस्करण) पृ. 143
6. श्यामाचरण दुबे–मानव और संस्कृति, पृ.99
7. वही–पृ. 109
8. जी.पी. मरडॉक–सामाजिक संरचना (हिंदी संस्करण) पृ.1
9. मैकाइवर एवं पेज–सोसाइटी, पृ. 238
10. लूसी मेयर–सामाजिक नृ विज्ञान की भूमिका (हिंदी संस्करण) पृ. 89
11. डब्ल्यू.एच. आर. रिवर्स–सामाजिक संगठन (हिंदी संस्करण)पृ. 10
12. प्रो. एम.एल. गुप्ता, डी.डी. शर्मा–सामाजिक मानवषास्त्र,पृ. 61
13. इलियट एण्ड मैरिल–सोशल डिसआग्रेनाइजेषन, पृ. 33
14. कमलेश्वर–सुबह–दोपहर–शाम, पृ. 33
15. वही, पृ. 34
16. वही, पृ. 34
17. कमलेश्वर – तीसरा आदमी, पृ. 20
18. वही, पृ. 26

19. वही, पृ.20
20. कमलेश्वर–वही बात, पृ. 58
21. डॉ. इरावती कर्वे–Kingship Organization in India, पृ. 10
22. डॉ. श्यामाचरण दुबे–मानव और संस्कृति, पृ. 113
23. प्रो.एम.एल. गुप्ता, प्रो. डी.डी. शर्मा – भारत में समाज, पृ. 83–84
24. डॉ. इरावती कर्वे – Kingship Organization in Indai, पृ. 10
25. प्रो. जौली – हिंदू कानून तथा रीतिरिवाज, (हिंदी संस्करण) पृ. 178
26. आई. पी. देसाई –The Joint Family पद india पद Sociological Bulletin Vol. V no. 2 Sept 1956 पृ. 148
27. कमलेश्वर – सुबह–दोपहर–शाम, पृ. 13
28. कमलेश्वर – तीसरा आदमी, पृ. 11
29. वही, पृ. 13
30. कमलेश्वर – कितने पाकिस्तान, पृ. 263
31. कमलेश्वर – सुबह–दोपहर–शाम,पृ. 23
32. श्रीकृष्णदत्त भट्ट–सामाजिक विघटन और भारत, पृ. 355
33. डॉ. के.पी. जया – कथाकार कमलेश्वर, पृ. 270
34. कमलेश्वर – तीसरा आदमी, पृ. 24
35. कमलेश्वर – सुबह–दोपहर–शाम, पृ. 33
36. कमलेश्वर– रेगिस्तान, पृ. 19
37. कमलेश्वर – तीसरा आदमी, पृ. 92
38. कमलेश्वर – वही बात, पृ. 53–54
39. कमलेश्वर – काली आँधी, पृ. 82
40. कमलेश्वर – तीसरा आदमी, पृ. 78
41. डॉ. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा–हजारी प्रसाद द्विवेदी के साहित्य में सामाजिक चिंतन, पृ. 13
42. कमलेश्वर – कितने पाकिस्तान
43. डॉ. प्रेमकुमार – नगर की चेतना के उपन्यास, पृ. 131

44. कमलेश्वर –डाक बंगला, पृ. 39
45. कमलेश्वर –लौटे हुए मुसाफिर, पृ. 86
46. वही, पृ. 101
47. वही, पृ. 122
48. वही, पृ. 128
49. वही, पृ. 134
50. कमलेश्वर – वही बात, पृ. 50
51. कमलेश्वर – रेगिस्तान, पृ. 76
52. कमलेश्वर – आगामी अतीत, पृ. 64
53. कमलेश्वर – सुबह–दोपहर–शाम, पृ. 99
54. वही, पृ. 83
55. वही, पृ. 83
56. हरिभाऊ उपाध्याय – बदलते संदर्भ और साहित्यकार, पृ. 114
57. कमलेश्वर – वही बात, पृ. 71
58. वही, पृ. 7
59. कमलेश्वर – आगामी अतीत, पृ. 56
60. कमलेश्वर – सुबह–दोपहर–शाम, पृ. 52
61. कमलेश्वर – काली आँधी, पृ. 50
62. वही, पृ. 52
63. कमलेश्वर – डाक बंगला, पृ. 61
64. कमलेश्वर – तीसरा आदमी, पृ. 92
65. कमलेश्वर – काली आँधी , पृ. 26
66. कमलेश्वर – रेगिस्तान, पृ. 27
67. कमलेश्वर – एक सड़क सत्तावन गलियाँ, पृ. 27
68. कमलेश्वर – समुद्र में खोया हुआ आदमी, पृ. 16
69. कमलेश्वर – काली आँधी, पृ. 77
70. वही, पृ. 78
71. कमलेश्वर – समुद्र में खोया हुआ आदमी, पृ. 68

72. कमलेश्वर – आगामी अतीत, पृ. 14
73. कमलेश्वर – समुद्र में खोया हुआ आदमी, पृ. 17
74. वही, पृ. 26
75. वही, पृ. 26
76. कमलेश्वर – रेगिस्तान,पृ. 13
77. वही, पृ. 14
78. कमलेश्वर – समुद्र में खोया हुआ आदमी, पृ. 95
79. वही, पृ. 53
80. कमलेश्वर – डाक बंगला, पृ. 75
81. वही, पृ. 76
82. कमलेश्वर – सुबह–दोपहर–शाम, पृ. 13
83. वही, पृ. 64
84. वही, पृ. 78–79
85. वही, पृ. 159
86. वही, पृ. 92
87. प्रेमचन्द–गोदान, पृ. 148
88. वही, पृ. 148
89. कमलेश्वर–डाक बंगला, पृ. 46
90. वही, पृ. 50
91. कमलेश्वर – काली आँधी, पृ. 120
92. कमलेश्वर – सुबह–दोपहर–शाम, पृ. 130
93. कमलेश्वर – वही बात, पृ. 45
94. कमलेश्वर – सुबह–दोपहर–शाम, पृ. 20
95. कमलेश्वर – डाक बंगला, पृ. 54
96. कमलेश्वर – काली आँधी, पृ. 61
97. वही, पृ. 83
98. कमलेश्वर – एक सड़क सत्तावन गलियाँ, पृ. 7
99. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी – बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ. 110

100. कमलेश्वर – एक सड़क सत्तावन गलियाँ, पृ. 19
101. वही, पृ. 70
102. कमलेश्वर – रेगिस्तान, पृ. 69
103. कमलेश्वर – वही बात, पृ. 79
104. कमलेश्वर – काली आँधी, पृ. 7
105. कमलेश्वर – डाक बंगला, पृ. 109
106. कमलेश्वर – आगामी अतीत, पृ. 102
107. उद्वाहतत्व तेन भार्यात्व सम्पादकं ग्रहण विवाहः।मनुस्मृति 3/20
108. लूसी मेयर – सामाजिक नृ–विज्ञान की भूमिका (हिंदी संस्करण) पृ. 90
109. डब्ल्यू एच.आर. रिवर्स – सामाजिक संगठन (हिंदी संस्करण) पृ. 29
110. ई.एस. बोगार्डस – समाजषास्त्र (हिंदी संस्करण)पृ. 75
111. मजूमदार एवं मदान – ।द प्दजतवकनबजपवद जव ैवबपंस ।दजतवचवसवहलए पृ. 79
112. वेस्टरमार्क – जीम भ्पेजवतल वि्भनउंद डंततपंहमए पृ. 26
113. डॉ. गुप्ता एवं डॉ. शर्मा – भारत में समाज, पृ. 113
114. कमलेश्वर – तीसरा आदमी, पृ. 45
115. कमलेश्वर – सुबह–दोपहर–शाम, पृ. 70–71
116. कमलेश्वर – रेगिस्तान, पृ. 33
117. कमलेश्वर – आगामी अतीत, पृ. 57
118. वही, पृ. 45
119. डॉ. विमलेंदु गुप्त–प्रेम विवाह और सैक्स (साप्ताहिक हिंदुस्तान जुलाई, 1973)पृ. 6
120. कमलेश्वर – समुद्र में खोया हुआ आदमी, पृ. 45
121. कमलेश्वर – वही बात, पृ. 57
122. वही, पृ. 75
123. कमलेश्वर – लौटे हुए मुसाफिर, पृ. 84

124. कमलेश्वर – तीसरा आदमी, पृ. 81
125. कमलेश्वर – वही बात, पृ. 57
126. कमलेश्वर – डाक बंगला, पृ. 25
127. कमलेश्वर – तीसरा आदमी, 96

उपसंहार

साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन वर्तमान काल यानी बीसवीं शती की देन है। इससे पूर्व साहित्य का साहित्यिक प्रतिमानों तथा दार्शनिक विषय पर कार्य होता था। कमलेश्वर स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कथा साहित्य के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। साठोत्तर कथा साहित्य जिसमें नयी कहानी तथा समांतर कहानी पर चर्चा करते समय कमलेश्वर को अलग करके संवाद अधूरा रह जाता है। कमलेश्वर ने समाज के मध्यवर्गीय जन–जीवन की आवाज को अभिव्यक्ति थी। मध्यवर्ग की समस्याओं, नगरीय–महानगरीय जीवन के अभिव्यक्ति कमलेश्वर ने बहुत ही संजीदगी के साथ अपने उपन्यासों में चित्रित किया है।

संपूर्ण अध्ययन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कमलेश्वर के उपन्यासों का मुख्य स्वर जहाँ समाज की प्रमुख समस्याओं को लेकर मुखर हुआ, वहीं राजनीतिक तथा अन्य समस्याओं पर बहुत तीक्ष्णता से प्रहार किया है। कमलेश्वर के उपन्यासों का विषय क्षेत्र अत्यंत व्यापक रहा है। वैयक्तिक क्रिया–कलापों से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं तक को उन्होंने अपने कथानकों में सम्मिलित किया है। व्यक्ति की समस्याओं से लेकर सार्वभौमिक समस्याएँ उनकी उपन्यास सृष्टि में अंतर्निहित है। भारतीय जीवन की अधिकांश समस्याएँ कमलेश्वर की लेखनी की विषय बनी हैं और वर्ण–भेद, दासता, पूँजीवाद, अन्तर्राष्ट्रीय–संघर्ष आदि विश्वव्यापी समस्याओं ने भी उनके उपन्यासों में यथेष्ठ स्थान पाया है। विषय–वस्तु की व्यापकता तथा असीमित परिधि के कारण ही कमलेश्वर के उपन्यास हिंदी–साहित्य का अपरिहार्य अंग बन गये हैं।

कमलेश्वर का संपूर्ण साहित्य बदलती हुई मनःस्थितियों का साहित्य है। यह परिवर्तन निरंतर विकास और रूपान्तरण का प्रतीक है। उनकी समस्त रचनाओं का अध्ययन करने के पश्चात यह स्थिति साफ हो जाती है कि उनका काव्य और उनकी अभिव्यक्ति कभी एक

जैसी नहीं रही। उनमें निरंतर परिवर्तन होता चला है। यह निरंतर गतिशीलता एक और जहां लेखक की रचनात्मक जीवंतता का सबूत है, वहीं आधुनिकता के आगमन की शर्त भी है। कमलेश्वर के उपन्यासों के अध्ययन से यह स्थिति साफ हो जाती है। उनके कुल बारह उपन्यास हैं जिनमें सामाजिक सरोकार, राजनीतिक चेतना तथा सामाजिक संबंधों एवं समाज में स्त्री–पुरुष की स्थिति का चित्रण मिलता है। मूलतः लघु – उपन्यासकार कहलवाने वाले कमलेश्वर ने कितने पाकिस्तान दीर्घ फलक वाला उपन्यास लिखकर उस अभियान को तोड़ा। प्रत्येक उपन्यास का अनुभूति तथा अभिव्यक्ति पक्ष बहुत ही सुंदर है। उनके उपन्यासों में रोजी – रोटी की समस्या, पति–पत्नी के कलह और प्रेम शंकाएँ, आस्थाएँ और निराशाएं आदि सब कुछ यथार्थ रूप में ही आते हैं।

कमलेश्वर के उपन्यासों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि वे अपने समकालीन साहित्यकारों से अलग ऊब, कुंठा, घुटन पलायनवादी प्रवृति, अनास्था, टूटन, विघटन, वितृष्णा का निषेध किया है। इन उपन्यासों में नये मूल्यों के प्रति आग्रह, नये सृजन की अकुलाहट और परिवर्तन की संभावना का संकेत है। इनमें सामाजिक समस्याओं के संदर्भ में आत्म ग्रंथियों का चित्रण विश्लेषण हुआ है।

कमलेश्वर ने जितनी सच्चाई के साथ अभिव्यक्ति पर बल दिया है। उतनी ही सच्चाई उनके व्यक्तित्व में परिलक्षित होती है। कमलेश्वर का व्यक्तित्व एक आईने की भाँति है। जिसमें सब कुछ स्पष्ट प्रतिबिंबित होता है। उनका व्यक्तित्व अनेक अंतर्विरोधों से परिपूर्ण था। वे अहंवादी, विनयशीलता, आज्ञाकारी पुत्र, आदर्श पति एवं पिता, संकोची स्वभाव वाले, दोस्त परवर, स्वावलंबी, मेहनती, आधुनिक, परम्परावादी, नास्तिक तथा मानवता में आस्था रखने वाले दिखायी पड़ते हैं।

नयी कहानी के अध्येता एवं समांतर कहानी आंदोलन के जनक, दलित आंदोलन के मसीहा कमलेश्वर ने जिंदगी को अपनी शर्तो पर

जिया और सिद्धांतों से कभी समझौता नहीं किया। इसके लिए जो कीमत अन्य को चुकानी पड़ी है, वही कमलेश्वर को भी चुकानी पड़ी। यह कीमत थी कि कई दिनों तक एक समय का भोजन करना। वर्षों तक एक दो कपड़ों में गुजारा करना। रात की पारी में चौकीदारी करना, पेंटिंग करना आदि अनेक कुछ ऐसे कार्य किये जो एक साहित्यकार के लिए अशोभनीय थे। परंतु यही कार्य कमलेश्वर की लेखन को मजबूती प्रदान करते हैं। कमलेश्वर एक युग चेता उपन्यासकार हैं। उनके उपन्यासों में युग की प्रमुख सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, साहित्यिक तथा दार्शनिक चेतना की अभिव्यक्ति मिलती है। उनके उपन्यास तीसरा आदमी, डाक बंगला, काली आँधी तथा सुबह–दोपहर–शाम के साथ लगभग सभी उपन्यास अपने युग बोध का अंकन करते हैं।

समाज, परिवार तथा सामाजिक संरचना का बहुत ही गहराई के साथ वर्णन, विश्लेषण कमलेश्वर के उपन्यासों में मिलता है। पारिवारिक संबधों, वैवाहिक स्थिति तथा समाज में स्त्री तथा पुरुष की स्थिति का चित्रण कमलेश्वर के उपन्यासों में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। पारिवारिक संबंधों में एक–दूसरे के प्रति जहां अंदर की अपेक्षा की जाती है वहीं परस्पर दायित्वपूर्ण भूमिका भी परिवार को सुखी तथा समृद्ध बनाने में महत्वपूर्ण रहती है। इन सब का चित्रण कमलेश्वर के उपन्यासों में उल्लिखित हैं। समाज में स्त्री–पुरुष के संबंध कैसे थे और आधुनिक समय में कैसे बदलाव के दौर से गुजर रहे हैं इनका चित्रण, अंकन वही बात, तीसरा आदमी, लौटे हुए मुसाफिर, डाक बंगला, एक सड़क सत्तावन गलियाँ तथा समुद्र में खोया हुआ आदमी उपन्यास में देखने को मिलते हैं परिवार में माता–पिता, भाई–बहिन तथा पति–पत्नी के संबंधों का रेखांकन भी कमलेश्वर के उपन्यासों में मिलता है।

समाज एवं वैवाहिक संस्था जिसमें सामाजिक विवाह तथा प्रेम–विवाहों की रीति–नीति परंपराओं का अंकन कमलेश्वर के

उपन्यासों में मिलता है। तीसरा आदमी, डाक बंगला, काली आँधी, रेगिस्तान उपन्यासों में कमलेश्वर ने प्रेम विवाहों के गुण–दोष दोनों का वर्णन किया है। अंतरजातीय विवाह का सुस्पष्ट चित्रण भी मिलता है। आधुनिक युग में महिलाओं ने प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति, प्रगति की है। जिसके चलते महिला शिक्षा तथा समाज का बदलता स्वरूप देखने को मिलता है। परिणामस्वरूप नये जीवन मूल्यों का निर्माण हो रहा है। स्त्री –पुरुष के बीच नये संबंधों का सृजन हो रहा है। दोनों के बीच तीसरे आदमी की उपस्थिति भी पारिवारिक दाम्पत्य रिश्तों को तोड़ने तथा विघटन के कगार पर पहुँचा दिये हैं। समाज में अवैध संबंधों के चलते समाज विघटन तथा टूटने के कगारपर पहुँच रहा है। कमलेश्वर ने इस तरह की हवा को बहुत पहले भाँप लिया था जिसकी अभिव्यक्ति का अंकन उन्होंने अपने उपन्यासों में किया है। कमलेश्वर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र की समझ कर गहन दृष्टि से चिंतन करने वाले रचनाकारों में से एक रहे हैं। उनके उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन के अंतर्गत विभिन्न समस्याओं का भी विश्लेषण, मूल्यांकन किया गया है। कमलेश्वर ने अपने उपन्यासों के माध्यम से अनेक समस्याओं का चित्रण किया है। धार्मिक, आर्थिक, साम्प्रदायिक तथा राजनीतिक समस्याओं के साथ–साथ कस्बाई तथा नगरीय–महानगरीय जीवन बोध का चित्रण स्वतः ही मिल जाता है। समाज में वर्गभेद, वर्ग वैषम्य, शोषित–शोषक की अवधारणा तथा जाति–पाँति, भेदभावों का अंकन किया है। वर्तमान की अर्थव्यवस्था की अस्थिरता तथा महँगाई व बेरोजगारी, रिश्वत, भ्रष्टाचार जैसी समस्याओं पर भी कलम चलायी है। कमलेश्वर मूलतः कस्बा में जन्में साहित्यकार है और बाद में जीवन संघर्ष नगरों में किया। उनके उपन्यासों में नगरीय समस्याओं, बूराईयों तथा स्पष्ट उल्लेख बेबाकी के साथ है। समुद्र में खोया हुआ आदमी, एक सड़क सत्तावन गलियाँ, डाक बंगला, आगामी अतीत उपन्यास इस बात को सच्चाई के साथ प्रस्तुत करते हैं।

अंत में यह कहा जा सकता है कि कमलेश्वर के साहित्य ने लेखन को व्यवसाय नहीं विश्वास माना है। इस विश्वास या आस्था की आवश्यकता उन्हें इसलिए पड़ी कि वे समाज में गहराई से जुड़े थे। अस्तित्व का संकट, जो एक सामूहिक संकट है, लेखक की हैसियत से वे भी झेलते हैं, लेकिन अपने में उसे झेलने की दर्जा भी पाते हैं। उन्होंने अपने संकट को दूसरों के संकट से तादात्मय कर लेखन संभव बनाया। इन्हीं संकट या यातनापूर्ण स्थितियों से उनकी साहित्य निधि प्रसवित होती है। उन्होंने सदैव अपने परिवेश जीवन के यथार्थ को व्यावहारिक संचेतना प्रदान की। एक आम सजग, व्यावहारिक बुद्धिजीवी की तार्किकता, सोदृश्यता, उत्साह और सामाजिक प्रतिबंद्धता उनके कूट–कूटकर भरी थी।

इस प्रकार समाहार रूप में कहा जा सकता है कि कमलेश्वर के उपन्यासों में समाजशास्त्रीय दृष्टि से समस्त बिंदुओं का अनेक रूपों का चित्रण हुआ है। कमलेश्वर की सामाजिक दृष्टि बहुत उर्वर थी तभी समाजशास्त्र के सूक्ष्म से सूक्ष्म सिद्धांत को बहुत ही व्यावहारिक रूप प्रदान किया है कमलेश्वर ने।

संदर्भ ग्रंथ सूची

आधार ग्रंथ सूची

कमलेश्वर के उपन्यास

1. एक सड़क सत्तावन गलियाँ–राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली – 1958
2. डाक बंगला – राजपाल एण्ड सन्ज दिल्ली, 1962
3. लौटे हुए मुसाफिर – ज्ञान भारती मुम्बई, 1963
4. तीसरा आदमी – हिन्द पॉकेट बुक्स दिल्ली, 1964
5. समुद्र में खोया हुआ आदमी – राजपाल एण्ड सन्ज दिल्ली, 1969
6. काली आँधी – राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली 1974
7. आगामी अतीत – शब्दकार, तुर्कमान गेट, दिल्ली, 1976
8. वही बात – शब्दकार, तुर्कमान गेट, दिल्ली, 1980
9. सुबह–दोपहर–शाम –राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली, 1982
10. रेगिस्तान – राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली, 1985
11. कितने पाकिस्तान–राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली, 2000
12. अनबीता व्यतीत–कादम्बिनी, (मासिक पत्रिका), 2005
13. कमलेश्वर के संपूर्ण उपन्यास–राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली

संदर्भ ग्रंथ

1. अग्रवाल, पी.सी. :शिक्षाशास्त्र–मध्यप्रदेश पुस्तक प्रकाशन, भोपाल, 1978
2. अग्रवाल, लक्ष्मी नारायण : लोक प्रशासन–अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, 1976
3. अग्रवाल, डॉ. शन्नो देवी–स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में समकालीन राजनीति, ग्रन्थायन, सर्वोदय नगर, अलीगढ़, 1984

4. अवस्थी, डॉ. कृष्ण : वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन, पुस्तक संस्थान, नेहरू नगर, कानपुर, 1975
5. कीर्ति, केसर :स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी का समाज–सापेक्ष अध्ययन–नचिकेता प्रकाशन, दिल्ली, 1982
6. कुमार, डॉ. राजिन्द्र–रांगेय राघव का उपन्यास साहित्य और युग चेतना–के.के पब्लिकेशन, दिल्ली, 2007
7. कुमार, जैनेन्द्र–प्रस्तुत प्रश्न–पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, 1953
8. उपाध्याय, हरिभाउ : बदलते सन्दर्भ और साहित्यकार–राजस्थान साहित्य अकादमी (संगम), उदयपुर, 1976
9. गम्भीर, ऊर्मिल : प्रतापनारायण श्रीवास्तव के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन–शोध प्रकाशन, मेरठ, 1970
10. गर्ग, भेरूलाल : स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी में सामाजिक परिवर्तन–चित्रलेखा प्रकाशन, दिल्ली, 1982
11. गुगलानी, डॉ. राजकुमारी : उपन्यासकार प्रेमचन्द : समाजशास्त्रीय अध्ययन–मन्थन पब्लिकेशन, रोहतक, 1983
12. गुप्ता, वी. डी. : उपन्यास का समाजशास्त्र–श्री पब्लिशिंग हाउस, अजमेरी गेट, दिल्ली, 1976
13. गुप्त, डॉ. बालकृष्ण : हिंदी उपन्यास : सामाजिक सन्दर्भ–अभिलाषा प्रकाशन, कानपुर, 1978
14. गुप्त, मैथिलीशरण : भारत–भारती–साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, वि. 2009
15. गुप्त, मैथिलीशरण : यशोधरा साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, 1959
16. गुप्त, डॉ. गणपति चन्द्र : साहित्य की आकर्षण शक्ति–नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1971

17. गुप्ता, डॉ. हुकमचन्द : आधुनिक काव्यों में नवीन जीवन–मूल्य–भारतीय संस्कृति भवन, जालन्धर, 1970
18. गुप्त, बाबूराम : उपन्यासकार नार्गाजुन–श्याम प्रकाशन, जयपुर, 1985
19. गुप्त, सूर्यकान्त : हिंदी उपन्यास वार्षिकी–सूर्य प्रकाशन, दिल्ली, 1976
20. गुप्ता, डॉ. कमला : हिंदी उपन्यासों में सामन्तवाद–अभिनव प्रकाशन, दिल्ली, 1979
21. गुप्त, डॉ. विश्वनाथ : विष्णु प्रभाकर–कुसुम प्रकाशन, आदर्श कालोनी, मुजफफरनगर, 1991
22. गुलाब राय, बाबू : प्रबन्ध प्रभाकर–हिंदी भवन, जालन्धर, इलाहाबाद, 1949
23. गोयल, डॉ. अनिल : हिंदी कहानी में नारी की सामाजिक भूमिका–आर्यान पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1985
24. गोस्वामी, क्षमा : नगरीकरण और हिंदी उपन्यास–जयश्री प्रकाशन, दिल्ली, 1981
25. गाडगिल, डॉ. म. के. : हिन्दी एकांकियों में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति–पुस्तक संस्थान, कानपुर, 1976
26. चतुर्वेदी, महेन्द्र : हिंदी उपन्यास : एक सर्वेक्षण–नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1962
27. जोशी, डॉ. चण्डी प्रसाद : हिंदी उपन्यास समाजशास्त्रीय विवेचन–अनुसंधान प्रकाशन, आचार्य नगर, कानपुर, 1962
28. जीर्मन : प्रेमचंद युगीन भारतीय समाज–बिहार हिंदी ग्रन्थ अकादेमी, पटना, 1974
29. जैन, अर्चना : प्रेमचन्द के निबन्ध साहित्य में सामाजिक चेतना–इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, कृष्णा नगर, दिल्ली, 1984

30. जैन, डॉ. एस. पी (अनुवाद) : समाजशास्त्र–हिमालयन प्रकाशन, आगरा, 1971
31. जया, डॉ. के.पी., कथाकार कमलेश्वर
32. तुलसीदास : दोहावली, संवत्, 513
33. तिवारी, भोलानाथ : रामचरित मानस–हिन्दुस्तानी एकेडमी, उ. प्र. इलाहाबाद, 1954
34. तोमर, राम बिहारी सिंह : समाजशास्त्र के मूल तत्व, भाग–2–श्रीराम मेहरा एण्ड क. आगरा, 1972
35. देसाई, डॉ. पारूकान्त : साठोत्तरी हिंदी उपन्यास–सूर्य प्रकाशन, दिल्ली, 1984
36. दिनकर, रामधारी सिंह : साहित्य मुखी (प्रथम)–उदयाचल, पटना, 1968
37. देसाई, मीरा : भरतीय समाज में नारी–मैकमिलन इण्डिया लि. , नई दिल्ली, 1982
38. दिनकर, रामधारी सिंह : हमारी सांस्कृतिक एकता–नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1987
39. दिनकर, रामधारी सिंह : संस्कृति के चार अध्याय, 1956
40. द्विवेदी, आ. हजारी प्रसाद : बाण भट्ट की आत्मकथा
41. देवराज, डॉ. : भारतीय संस्कृति–हिंदी समिति, सूचना विभाग, उ. प्र. लखनउ, 1966
42. देवराज, डॉ. : संस्कृति का दार्शनिक विवेचन–सूचना एवं प्रसारण विभाग, उ. प्र. लखनउ, 1957
43. नगेन्द्र, डॉ. : विचार और विश्लेषण– नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1969
44. नगेन्द्र डॉ. : (स.) आस्था के चरण– नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1980

45. नागर, विमल शंकर : हिंदी के आँचलिक उपन्यास, सामाजिक एवं सांस्कृतिक संदर्भ–प्रेरणा प्रकाशन, मुरादाबाद, 1985
46. नन्दा, एस.एस. : नेशनल मूवमेण्ट एण्ड इण्डियन गवर्नमेण्ट मॉडर्न पब्लिशर्ज, दिल्ली, 1984
47. नागर, नरोत्तम (अनुवादक) : उपन्यास और लोक जीवन–पीपुल्स पब्लिशिंग, दिल्ली, 1967
48. पानेरी, डॉ. हेमेन्द्र कुमार : स्वातन्त्रोत्तर हिंदी उपन्यास : मूल्य संक्रमण–संबंधी प्रकाशन, जयपुर, 1974
49. बड़ोले, डॉ. भगीरथ : स्वातन्त्रयोत्तर हिंदी उपन्यास में मानव–मूल्य और उपलब्धियाँ–स्मृति प्रकाशन, 124 शहरारा बाग, इलाहाबाद, 1983
50. बिस्सा, कृष्ण कुमार : साठोत्तरी उपन्यासों में राजनीतिक चेतना–दिनमान प्रकाशन, दिल्ली, 1984
51. भट्ट, श्रीकृष्ण दत्त : सामाजिक विघटन और भारत–बिहार हिंदी ग्रन्थ अकादेमी, पटना, 1974
52. भारद्वाज, हेतु : स्वातन्त्रयोत्तर हिन्दी कहानी में मानव–प्रतिभा–पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1983
53. भारती, डॉ. धर्मवीर : मानव–मूल्य और साहित्य–भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, 1960
54. भूपेन्द्र, भूपसिंह : मध्यम–वर्गीय चेतना और हिंदी उपन्यास–श्याम प्रकाशन, जयपुर, 1987
55. मधुप, घनश्याम : हिंदी लघु–उपन्यास–राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1971
56. मैथ्यू, आर्नल्ड : पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्त (स. डॉ. शान्ति स्वरूप गुप्त)–अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली, 1976
57. मिश्र, डॉ. शिवकुमार : मार्क्सवादी साहित्य चिन्तन–मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादेमी, भोपाल, 1973

58. मिश्र, डॉ. शिव कुमार : साहित्य और सामाजिक सन्दर्भ–कला प्रकाशन दिल्ली, 1977
59. मिश्र, डॉ. श्यामसुन्दर : अस्तित्ववाद–विद्या प्रकाशन, दिल्ली, 1971
60. मुक्तिबोध, ग.मा. : नए साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र
61. मुंशी, प्रेमचन्द : कुछ विचार : साहित्य का उद्देश्य–सरस्वती प्रेस, बनारस, 1954
62. यादव, राजेन्द्र : औरों के बहाने–अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, 1980
63. यादव, एच. एस. : भारतीय शिक्षा प्रणाली की संरचना और समस्याएँ–टण्डन पब्लिकेशन्स, लुधियाना, 1987
64. रसीद डॉ. गुलिस्ता – भगवती चरण वर्मा के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन, पुस्तक प्रकाशन, दिल्ली 2012
65. यादव, सुरेन्द्र : माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य में राष्ट्रीयता–प्रगति प्रकाशन, आगरा, 1978
66. राय, गुलाब : काव्य के रूप–प्रतिमा प्रकाशन, दिल्ली, 1954
67. वर्मा, डॉ. रामकुमार : साहित्य चिन्तन–किताब महल, इलाहाबाद, 1965
68. वरहाटे, जयश्री : हिंदी उपन्यास : सातवाँ दशक–संचयन, 152–सी, गोविन्द नगर, कानपुर, 1988
69. शर्मा, वी. वी. : समाजशास्त्र–सुशील प्रकाशन, मेरठ, 1981
70. श्याम, डॉ. सीताराम झा : भारतीय समाज का स्वरूप –बिहार हिंदी ग्रन्थ अकादेमी, पटना, 1974
71. शर्मा, डॉ. मोहिनी–हिन्दी उपन्यास और जीवनमूल्य, साहित्यगार जयपुर, 1986
72. स्वर्णलता : स्वातन्त्रयोत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य की समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि–विवेक पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 1975

73. स्नातक, विजयेन्द्र : विचार के क्षण–नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1970
74. सक्सेना, डॉ. द्वारिका प्रसाद : साहित्यिक निबन्ध–मीनाक्षी प्रकाशन मेरठ एवं दिल्ली, 1981
75. साहनी, भीष्म (स.) : आधुनिक हिंदी उपन्यास–प्रकाशक–प्राचार्य, जाकिर हुसैन कॉलेज, दिल्ली, 1976
76. सिद्धान्तालंकार, सत्यव्रत : समाजशास्त्र के मूल तत्व–विजय कृष्ण लखन पाल एण्ड क., विद्यामन्दिर, देहरादून, 1957
77. सिन्हा, डॉ. सुरेश : हिंदी उपन्यास : उद्भव और विकास–अशोक प्रकाशन, दिल्ली, 1962
78. सिंहल, डॉ. बैजनाथ : साहित्य मूल्य और प्रयोग–संचय प्रकाशन, दिल्ली, 1985
79. सिन्हा, डॉ. सुरेश : हिंदी उपन्यास : उद्भव और विकास–अशोक प्रकाशन, दिल्ली, 1962
80. सुमित्र, डॉ. नारायण स्वरूप शर्मा, : साहित्य समीक्षा के सोपान–अणिमा प्रकाशन, बड़ोत, 1990
81. त्रिपाठी, डॉ. शम्भू रत्न (अनुवादक) :विवाह और समाज–समाजशास्त्र सदन, कानपुर, 1965
82. सूर्यनारायण मा. रणसुभे : कहानीकार कमलेश्वर : संदर्भ और प्रकृति पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1977
83. सिंह, डॉ. पुष्पपाल – कमलेश्वर : कहानी का संदर्भ – मैकमिलन क. ऑव इण्डिया, दिल्ली, 1879
84. सिंह, मधुकर : कमलेश्वर, शब्दकार, गली डकोतान, तुर्कमान गेट दिल्ली, 1977
85. शाह, डॉ. माधुरी–कमलेश्वर का कथा साहित्य (शोध प्रबंध)

86. सिंह, डॉ. सत्यवीर–कमलेश्वर : व्यक्तित्व और कृतित्व : आलोचनात्मक विश्लेषण (शोध प्रबंध) राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
87. शर्मा, डॉ. आनन्द–उपन्यासकार कमलेश्वर : समाज शास्त्रीय निकष पर, मेधा बुक्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली, 2002
88. चौहान, डॉ. उषा–नयी कहानी में कहानीकारों की आलोचनात्मक दृष्टि, हिमाचल पुस्तक भण्डार, 1990
89. कमलेश्वर, डॉ. गायत्री–कमलेश्वर मेरे हम सफर–राजपाल एण्ड संस दिल्ली, 2005

अंग्रेजी ग्रन्थ

1. इन्कल्स, एल्केकस : व्हाट इज सोशियोलॉजी–प्रिन्टिश हाल ऑव इण्डिया लि., दिल्ली, 1965
2. इलियट, एम. ए. : सोशल डिस–आग्रेनाइजेशन–हार्पर एण्ड ब्रादर्श पब्लिशर, न्यूयार्क, 1961
3. इलियट एण्ड मोरिली : सोशल डिस–आग्रेनाइजेशन–मैकमिलन क., इंग्लैण्ड, 1970
4. एलेन बार : आधुनिक राजनीति और शासन–मैकमिलन क. ऑव इण्डिया, लन्दन, 1971
5. एस्कारपिट, राबर्ट (स.) : सोशियोलॉजी ऑव लिट्रेचर–फैंककास एण्ड क. लि., लन्दन, 1971
6. एंगेल्स, कार्लमार्क्स एण्ड : लिट्रेचर ऑव आर्ट–करण्ट बुक हाउस, बम्बई, 1956
7. एलस्विवुड : दा सोशियोलॉजी ऑव लिट्रेचर मैकमिलन एण्ड क., लन्दन, 1971

8. एलब्रेचस्ट, एम. सी. : दा सोशियोलॉजी ऑव लिट्रेचर मैकमिलन एण्ड आर्ट (स.) गिराल्ड डकवर्थ एण्ड क. लि., लन्दन, 1970
9. एलिजाबेथ एण्ड टामर्बन : जैनेटिक्स स्ट्रक्चरलिज्म इन दा सोशियोलॉजी ऑव लिट्रेचर एण्ड इन दा सोशियोलॉजी ऑव ड्रामा–पैंग्विन बुक्स लि., इंग्लैण्ड, 1973
10. कोजर, एल. ए. :सोशियोलॉजी थ्रू लिट्रेचर इण्ट्रोडक्शन–एंगल बुड क्लीक प्रिंटिंग हाल, लन्दन, 1963
11. काडविल, क्रिस्टोफर : इल्यूशन एण्ड रियलिटि–पीपुल्स पब्लिकेशन, बम्बई।
12. कोरियन, पावेल : थाट आन आर्ट एण्ड सोशियाटिक रियलिज्म इन लिट्रेचर एण्ड आर्ट–प्रोग्रेस पब्लिशिंग, मास्को, 1971
13. गिडिंल्स : दा प्रिंसिपल ऑव दा सोशियोलॉजी–दा मैकमिलन क., लन्दन, 1948
14. गिलिन, जे. जे. : कलचरल सोशियोलॉजी–दा मैकमिलन एण्ड क., न्यूयार्क, 1948
15. गोल्डमैन, ल. : दा हिड्डन गॉड–स्थलज एण्ड कैगर्नपाल, लन्दन, 1956
16. गोल्डमैन, ल., :टूवार्ड्स ए सोशियोलॉजी ऑव ए नावेल–रविस्टांक पब्लिशिंग, लन्दन, 1975
17. जिन्सबर्ग, मैरिस : सोशियोलॉजी–आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क, 1934
18. तुंग, माओ–त्से : टाक्स एट दॉ येनन फोरेन आन आर्ट एण्ड लिट्रेचर–फारेन लैंग्वेज प्रेस, पिकिंट, 1959
19. फाक्स, रेलफक्स : दा नावेल एण्ड दा पीपुल्स–कोबाल्ट प्रेस लि., लन्दन, 1948

20. मैकाइवर एण्ड पेज : सोसाइटी–मैकमिलन एण्ड क., लि., लन्दन, 1953
21. मैकाइवर एण्ड पेज : सोसाइटी, ए टेक्स्ट बुक ऑव सोशियोलॉजी–रैनहर्ट एण्ड क., आई. एन. सी. पब्लिशर, न्यूयार्क, 1947
22. मुखर्जी, डी. पी. : सोशियोलॉजी–पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1958
23. यंग किम्बल : प्रिंसिपल्स ऑव दा सोशियोलॉजी–यूराशिया पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि., रामनगर, दिल्ली, 1960
24. रयूटर, इ.बी. – हैंड बुक ऑफ सोसाइटी
25. रास, ए. एम. सोशियोलॉजी–एलफर्ड ए. नाफ. पब्लिशर्ज, न्यूयार्क, 1957
26. राव व वारेन : सोशियोलॉजी : एन इण्ट्रोडक्शन लिटिल फिल्ड–ऐडम एण्ड क., पैटरशन, न्यूजर्सी, 1959
27. लारेन्स, डायना : दा सोशियोलॉजी ऑव लिट्रेचर–मैग्जीवन एंड क., लंदन, 1971
28. लैविन, हैनरी : सोशियोलॉजी ऑव लिट्रेचर एण्ड ड्रामा–पैंग्विन बुक्स लि., इंग्लैण्ड, 1973
29. लेनिन, वी. आई : लिट्रेचर ऑव आर्ट–करण्ट बुक हाउस, बम्बई, 1956
30. वेलेक, आर. : ए हिस्ट्री ऑव दा मॉडर्न क्रिटिसिज्म (1750–1950) (वाल्यूम–3)–जोनाथन कैप, लन्दन, 1965
31. साई. एन. : दा कोलम्बिया प्र. विलियम ब्रिज वाटर एण्ड सेमसन कुर्तज कोलम्बिया यूनि. प्रेस, न्यूयार्क, 1986
32. सिपसर पार्सिवल–मॉडर्न इण्डिया : दा ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑव इण्डिया–3, आक्सफोर्ड यूनि. प्रेस, लन्दन

33. सोरोकिन, पी.ए. : सोसाइटी, कलचर एण्ड पर्सनैलिटी—हार्पर एण्ड ब्रादर्ज, नई दिल्ली, 1948
34. हरदास, श्री बल शास्त्री : आर्म्ड स्ट्रगल फार फ्रीडम (1857)—काल प्रकाशन, पूना, 1958

*****